अंक १ वर्ष २ अप्रैल १९७०

वैज्ञानिक

अधुनातन विज्ञान की त्रैमासिक पत्रिका

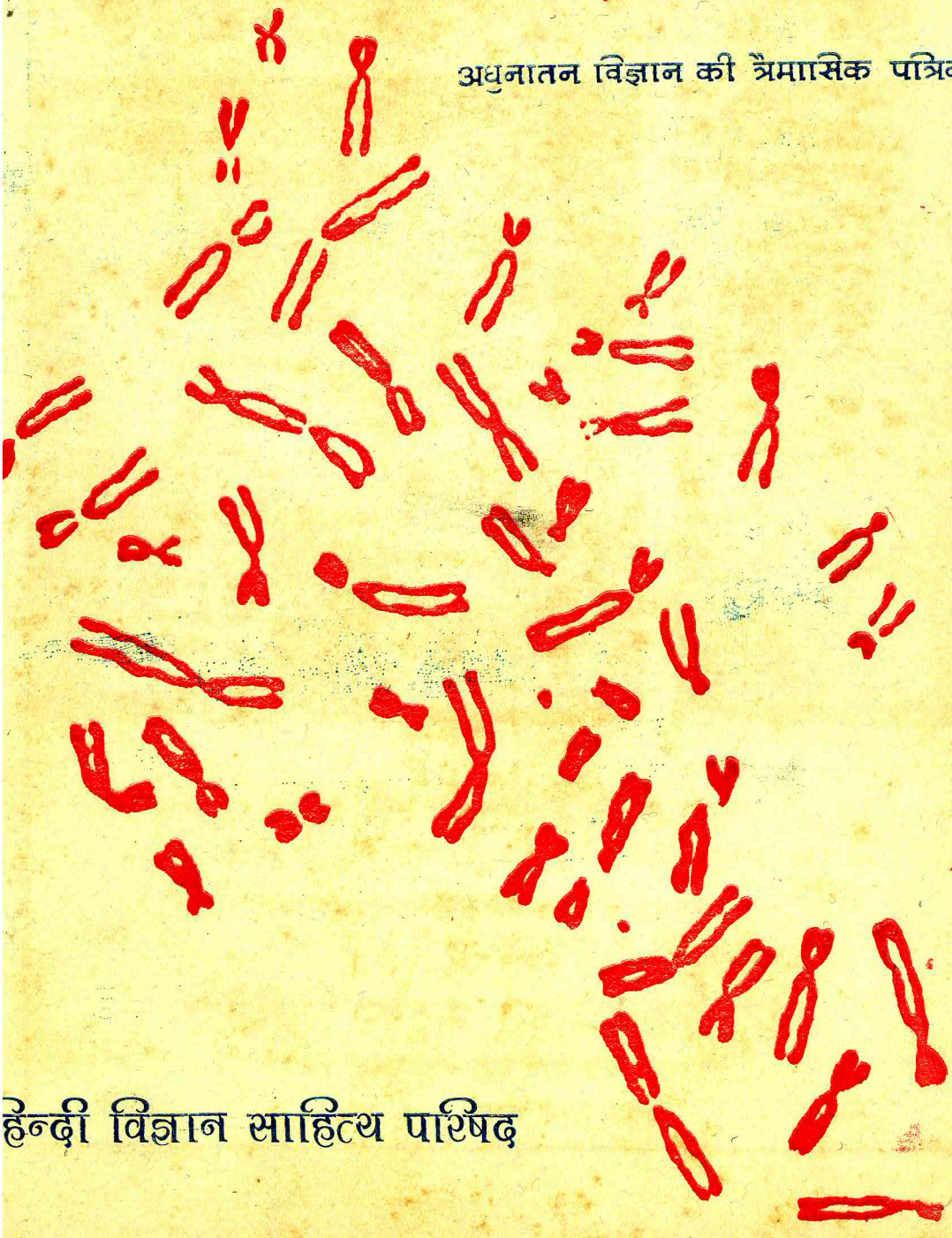

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

अंक १ वर्ष २ अप्रैल १९७०

वैज्ञानिक

व्यवस्थापक
डा. सुखदेव पाल

संयोजन समिति
कृ. हरिहर अय्यर
शिवदुलारे प्रसाद अवस्थी
भूपेंद्र नारायण राठी
डा. जगदीश लूथरा

संपादन मंडल
ब्रजमोहन पांडे
डा. प्रताप कुमार माथुर
उमेश चंद्र मिश्र
माधव सक्सेना

—

पत्रिका में व्यक्त किये लेखकों के विचारों से हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद अथवा संपादन मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है. पत्रिका में प्रकाशित समस्त सामग्री के सर्वाधिकार परिषद के पास सुरक्षित हैं.

शुल्क
वार्षिक दो रुपये
एक प्रति ५० पैसे

—

हिंदी-विज्ञान साहित्य परिषद
सूचना प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र
बम्बई-८५.

पहला भारतीय रिएक्टर ३
नरेश चंद्र झाम्ब
मानव शरीर की इकाई बनाम सेल की खोज ९
डा. दुर्गासिंह
माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक्स १३
काशीनाथ झा
बहुलक पानी बनाने की विधि १६
डा. प्रताप कुमार माथुर
इसे भी समझिए - प्रकाशज विद्युत १७
डा. रघुबीर शरण शर्मा
इंजीनियरी डिजाइन और उसका भविष्य २०
ए. पी. आनंद
धागों में उलझा हमारा जीवन २४
डा. अनिल सद्गोपाल
धीवरों की पुरातन-कला का आधुनिकीकरण २६
ललित चंद्र चंदोला

कृषि-उद्योग सम्मिश्र परियोजना ५ आपका ज्ञान
पुस्तक समीक्षा भारतीय वैज्ञानिक २३
जिज्ञासाएं २५ वे जो रास्ते बना गये - बीरबल
साहनी २६ नये एफ.आर.एस. प्रोफेसर मेनन २९
विज्ञान खबरें ३१ विचार मंच ३२
और अंत में ४०

मुखपृष्ठ का चित्र
मानवीय कोशों की विभाजनशील अवस्था में दिखायी देने वाले ४६ क्रोमोसोम.

इस विषयपर डा. अनिल सद्गोपाल का विशेष लेख पृष्ठ २४ पर देखें.

पहला भारतीय रिएक्टर

नरेश कुमार झाम्ब, साइरस, भा. प. अ. केंद्र. बम्बई.

अप्सरा रिएक्टर भारत में निर्मित प्रथम रिएक्टर है. यह भारतीय वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों द्वारा निर्मित एवं डिजाइन किया गया है. इस रिएक्टर से १००० किलोवाट तक ऊर्जा उत्पादित की जा सकती है. किंतु सामायतः ४०० किलोवाट शक्ति स्तर तक ही इसका प्रचालन किया जाता है.

रिएक्टर का मुख्य भाग एक बड़ी-सी तालाबनुमा टंकी के अंदर तैरता रहता है. इस प्रकार के रिएक्टरों को इसी लिए स्वीमिंग पूल प्रकार का रिएक्टर कहा जाता है. ईंधन के रुप में इस रिएक्टर में संपन्न यूरोनियम का प्रयोग किया जाता है. साधारणतयः प्राकृतिक यूरेनियम में यूरेनियम-२३५ की मात्रा केवल .७२ प्रतिशत होती है. यूरेनियम-२३५ की इससे अधिक मात्रा वाले यूरोनियम को संपन्न यूरेनियम कहा जाता है अप्सरा रिएक्टर में मंदक, परावर्तक और शीतलक के रुप में साधारण जल का इस्तेमाल किया जाता है. इस रिएक्टर की क्रोड, ५६ से. मी. लम्बे, ५६ से. मी. चौड़े और १५ से. मी. ऊंचे अल्युमिनियम की एक ग्रिड प्लेट पर आधारित है. इसमें ४९ छेद हैं जिनमें ईंधन दण्ड, नियंत्रक दण्ड और समस्थानिक निर्माण के कैप्सूल रखे जाते हैं. इसे रिएक्टर क्रोड को ट्रॉली द्वारा टंकी में जल की सतह से ६.७ मीटर नीचे लटका दिया जाता है. यह टंकी जिसमें कि पानी भरा रहता ८ मीटर लम्बी, ३ मीटर चौड़ी और ८.२ मीटर ऊंची है. ट्रॉली द्वारा रिएक्टर क्रोड को टंकी के किसी भी भाग में रखा जा सकता है. टंकी की कांक्रीट की बनी दीवारें लगभग २.६ मीटर मोटी हैं. टंकी का जल और कांक्रीट की ये दीवारें रिएक्टर क्रोड में उत्पन्नहा निकारक विकिरणों से सुरक्षा प्रदान करती हैं.

रिएक्टर नियंत्रण प्रणाली

रिएक्टर का नियंत्रण चार नियंत्रक दण्डों अथवा छड़ों द्वारा किया जाता है. इन छड़ों में अल्युमिनियम की प्लेटों के बीच कैडमियम पदार्थ रखा होता है. कैडमियम का न्यूट्रान परिग्रहण परिच्छेद बहुत अधिक होने के कारण इन नियंत्रक छड़ों को रिएक्टर क्रोड के अंदर या बाहर निकालने से रिएक्टर में उत्पन्न ऊर्जा को बढ़ाया या घटाया जा सकता है. ये नियंत्रक छड़े विद्युत मोटर द्वारा चलायी जाती हैं. विद्युत मोटर के साथ ये विद्युत चुम्बक द्वारा जोड़ दी जाती हैं. रिएक्टर प्रचालन के समय किसी असामान्य घटना के होने पर स्वतः नियंत्रण प्रणाली द्वारा विद्युत चुंबक को शक्तिहीन कर दिया जाता है जिससे नियंत्रक छड़ रिएक्टर क्रोड में गिर जाती है और परमाणु विखण्डन प्रतिक्रिया को बंद कर देती है.

इन नियंत्रक छड़ो में तीन तो बड़े ऊर्जा परिवर्तनों के लिए या रिएक्टर बंद करने के लिए प्रयोगमें लायी जाती हैं. चौथी छड़ केवल ऊर्जा उत्पादन के लघु परिवर्तन लाने के लिए ही प्रयोग में लायी जाती है. रिएक्टर प्रचालन प्रारंभ करने के लिए यह नियंत्रक छड़ें रिएक्टर क्रोड से धीरे-धीरे बाहर निकाली जाती हैं और जब रिएक्टर क्रांतिक अवस्था में पहुंचता है तो स्वतः नियंत्रण प्रणाली रिएक्टर नियंत्रण को अपने अधिकार में कर लेती है और ऊर्जा उत्पादन को नियत स्तर पर स्थिर कर लेती है.

अप्सरा रिएक्टर का प्रचालन सुदूर प्रचालन तकनीक द्वारा किया जाता है. इसमें प्रचालक नियंत्रण कक्ष में बैठे बैठे ही रिएक्टर के समस्त नियंत्रण कार्य कर सकता है. यदि रिएक्टर में कोई आकस्मिक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जाये तो स्वतः नियंत्रण प्रणाली द्वारा

नियंत्रण कक्ष में चेतावनी की घंटी बज उठती है और

शीतक प्रणाली

रिएक्टर स्वतः बंद हो जाता है.

रिएक्टर क्रोड में उत्पन्न हुई उष्मा का निष्कासन शीतल जल द्वारा किया जाता है. यदि रिएक्टर का शक्ति उत्पादन स्तर १०० किलोवाट से अधिक हो तो रिएक्टर की टंकी का २,०४,०००, लिटर जल, ९०० लिटर प्रति मिनट की गति से उष्मा विनिमयकारी यंत्र में से पंप द्वारा पुनर्प्रवाहित किया जाता है. उष्मा विनिमयकारी यंत्र में एक ओर तो टंकी का प्राथमिक शीतक जल और दूसरी ओर द्वितीयक शीतक जल का प्रचालन किया जाता है. इस प्रकार टंकी का प्राथमिक शीतक जल उष्मा विनमयकारी यंत्र में ठंडा हो कर फिर से टंकी में डाल दिया जाता है. टंकी के जल को साफ रखने और जल के ph मान को तटस्थ रखने के लिए इस प्राथमिक शीतक प्रणाली में जलशोधक, फिल्टर और आयन विनमयकारी यंत्र जैसे कई दूसरे सहायक यंत्र प्रयोग में लाये गये हैं.

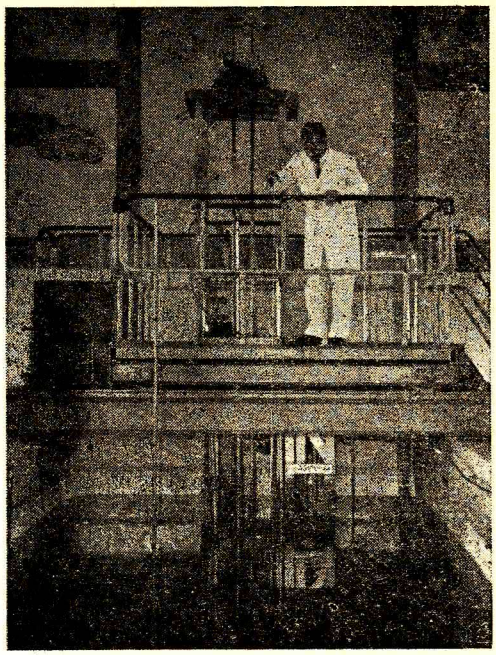

अप्सरा का एक दृश्य

शेष पृष्ठ ३० पर

रिएक्टर का सेक्शनल चित्र

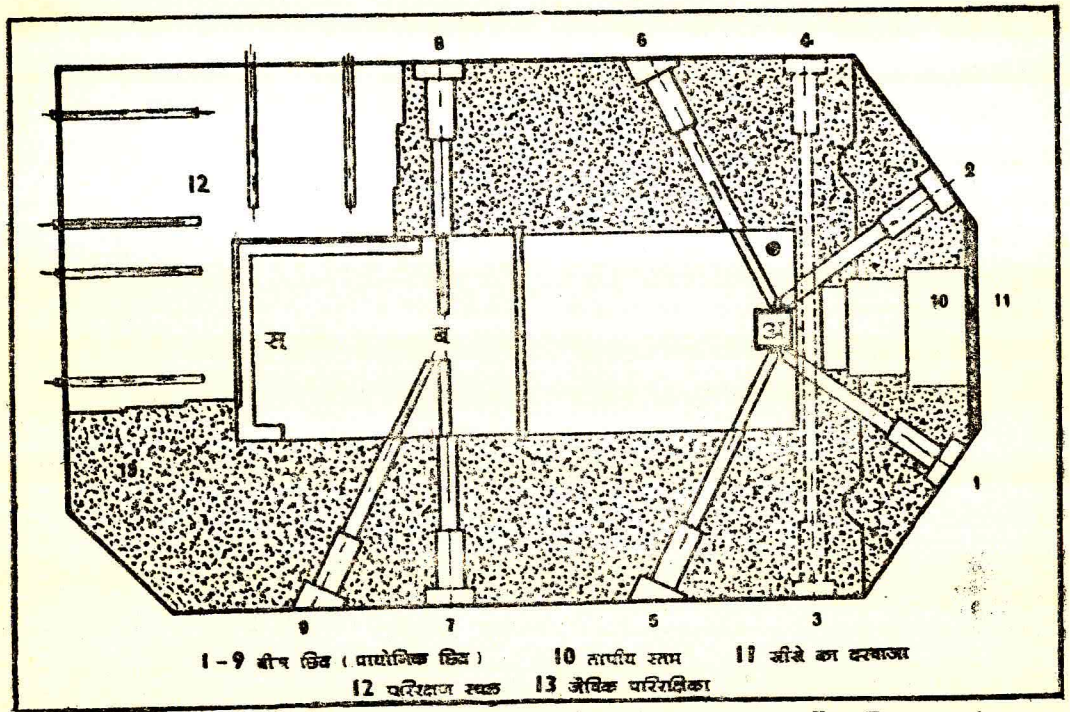

1–9 बीम छिद्र (प्रायोगिक छिद्र) 10 तापीय स्तंभ 11 सीसे का दरवाजा
12 परीक्षण स्थल 13 जैविक परिरक्षिका

कृषि उद्योग सम्मिश्र परियोजना

यह आवश्यक है कि देश की जनता का भरण पोषण देश में उत्पन्न खाद्यान्न द्वारा ही हो. लेकिन पिछले कई वर्षों से जी तोड़ प्रयासों के बावजूद भी हमें कृषि में आत्मनिर्भरता प्राप्त नहीं हो सकी है. इसके पीछे मुख्य कारण है हमारे किसान भाइयों का गांव छोड़ कर शहरों की ओर दौड़े चले आना. किंतु शहरी आकर्षण ही ग्रामीण क्षेत्रों के खाली होने का एक मात्र कारण नहीं है. मौसम की अनिश्चितता तथा फसल खराब हो जाने का भय भी ग्रामीण जनता में घर कर गया है. इसके विपरीत शहरों में जाकर मेहनत मजदूरी करके उन्हें भरपेट रोटी सुलभ कर पाना कठिन नहीं लगता.

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि शहरों से उद्योगों का विकेंद्रीकरण करके गांवों की ओर प्रयाण किया जाये. खेती के लिए आधुनिक तरीकों का प्रयोग हो तथा ठीक समय पर यथेष्ठ मात्रा में पानी का प्रबंध किया जा सके.

अप्रत्यक्ष रुप से खेती के लिए परमाणुशक्ति का उपयोग भी संभव है. परमाणुशक्ति संयंत्र अथवा दूसरे शब्दों में, रिएक्टर द्वारा बिजली उत्पादित करके नलकूपों के माध्यम से पानी उपलब्ध करना एक आधुनिक विकल्प है. रिएक्टर से उत्पन्न होने वाली बिजली, बिजली उत्पादन की रुढ़िगत विधियों से कहीं सस्ती पड़ती है. रिएक्टर से प्राप्त होने वाली बिजली से उर्वरकों का उत्पादन भी सरल हो जाता है.

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में कृषि-उद्योग अध्ययन दल का गठन किया गया था. जनवरी १९७० में टाटा-संस्थान में हुई न्यूक्लीय शक्ति सेमिनार में परमाणु ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डॉ. विक्रम साराभाई ने उपर्उल्लेखित दल के परिणामों को एक शोधपत्र के रुप में प्रस्तुत किया.

यह अध्ययन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मेरठ, रोहिलखण्ड और आगरा डिवीजनों के लिए किया गया है. जिस रफ्तार से हमारे देश में औद्योगीकरण हो रहा है, आज से ५ वर्ष बाद सन १९७५ में भारत की बिजली की आवश्यकता २५,००० मेगावाट (वैद्युत) हो जायेगी और तब हमें काफी बड़ी इकाइयों की आवश्यकता पड़ेगी.

बड़े जल-बिजली अधिष्ठानों को छोड़कर हमारे देश में बिजली उत्पादन-व्यय सामान्यतः पांच पैसे प्रति किलोवाट घंटे से अधिक ही होता है. लेकिन इन अधिष्ठानों की स्थिति देश के कुछ विशेष भागों में ही हो सकती है इसलिए इन इकाइयों से सारा देश लाभांवित नहीं हो पाता.

बड़े आकार के न्यूक्लीय बिजली घरों के अधिष्ठान द्वारा अप्रत्याशित ढंग से बिजली उत्पादन-व्यय कम हो जाता है. हमें एक ऐसा रास्ता ढूंढ निकालना चाहिए जिससे कम खर्चीली बिजली देने वाली अकेली इकाइयों की स्थापना की जाये ताकि सही रुप से देश के विभिन्न क्षेत्रों के आर्थिक विकास में क्रांति लायी जा सके. ऐसे समाकलित सम्मिश्र की योजना बनानी चाहिए जिसमें बिजली उत्पादन इकाई के निकट ही बिजली खपत केंद्र हो. बिजली खपत केंद्र से संचारण (ट्रांसमिशन) के न्यूनतम व्यय पर परमाणु शक्ति संयंत्र का आवश्यक मूल-लोड मिल सकेगा. शेष बिजली को बहुत ही सस्ते मूल्यों पर बेचने के लिए ग्रिड को दिया जा सकेगा.

कुछ दिन पूर्व प्रस्तुत की गयी अध्ययन की प्रारंभिक जानकारियों में यह बताया गया था कि कैसे नाइट्रोजनी एवं फॉस्फेटी उर्वरकों, तथा अल्युमिनियम के उत्पादन के लिए और खारे पानी को निर्लवणीकृत करके अथवा नलकूपों को बिजली पहुंचा कर सिंचाई-जल प्राप्ति के लिए कम खर्चीली न्यूक्लीय बिजली का प्रयोग किया जा सकता है.

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए प्रस्तावित की गयी परियोजना न्यूक्लीय बिजली द्वारा उर्वरकों के उत्पादन और नलकूपों को बिजली देकर सिंचाई करने पर आधारित है. विविध फसलों एवं फसल-क्रमों की अर्थ-शास्त्रीय व्यवस्था पर विद्युत दर के प्रभाव का भी अध्ययन किया गया है.

आजकल, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लगभग ५२ लाख एकड़ फीट पानी प्रतिवर्ष भूमि में से पम्प किया जाता है. कृषि-उद्योग सम्मिश्र के अंतर्गत लगभग १५ लाख हेक्टर (३७.५ लाख एकड़) क्षेत्र का प्रस्ताव रखा गया है. फसल की तीन सौ प्रतिशत सघनता के लिए यथेष्ठ भूजल का प्राप्य होना ही पश्चिमी उत्तर प्रदेश के चयन का मुख्य कारण है. भूजल की मात्रा का सही-सही अनुमान करने के लिए और जल-स्तरणों की पुनःपोषण दर जानने के लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा किये जाने वाले प्रयोगों की एक शृंखला की संयुक्त योजना बनायी गयी है.

जलभृत-स्तरणों की स्थिति का निश्चयन प्राप्त स्तृत चार्टों और झरनों के स्तरों द्वारा तथा संछिद्र-कुओं (बोर वेल्स) को खोद कर प्राप्त की गयी गणनाओं और भूवैज्ञानिक सहसंबधन लेखापत्रों को तैयार करके करना होगा. इन कुओं के वैद्युत अभिलेखन द्वारा जल-स्तरणों की प्रकृति संबंधी सही प्रमाण मिल सकेंगे और अंत में कुओं से पानी निकाल कर परीक्षणों द्वारा जल-स्तरणों की प्रकृति का पूर्ण रुप से निश्चय किया जा सकेगा.

बरसात, नदी-नाले-झरनों, नहरों और नयी जल संचय स्कीमों के द्वारा भूजल की गति एवं जल-स्तरणों के पुनः पोषण पर होने वाले मौसमी परिवर्तनों का अध्ययन किया जायेगा. यह कार्य रेडियो एक्टिव अनुसारक (ट्रेसर), ट्रीशियम को भूमि में पहुंचाकर वर्षा जल के रिसाव में इसकी गति के अध्ययन द्वारा और अनुसारकों को प्रेक्षण (आब्जरवेशन) कुओं में पहुंचाकर भूजल के गमन की दिशा तथा दर जानकर किया जायेगा.

रेडियो अनुसारक अध्ययनों द्वारा वर्षाजल के रिसाव और गमन की दिशा का निश्चयन भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र तथा टाटा-संस्थान द्वारा किया जायेगा, जबकि यह अपेक्षा की जाती है कि क्षेत्र-विशेष के प्रेक्षण और संछिद्र-कुओं की खुदाई तथा कार्यक्षेत्र के परीक्षण उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संचालित किये जायेंगे. प्रस्तावित कृषि-उद्योग सम्मिश्र की आवश्यकताओं के लिए भूजल प्राप्ति की पुष्टि, इस प्रकार संकलित समस्त सूचनाओं से की जायेगी.

पूर्ण सम्मिश्र

सम्मिश्र में ६०० मेगावाट (वैद्युत) क्षमता वाले दो न्यूक्लीय रिएक्टर आयेंगे. १२ लाख टन की कुल क्षमता वाले उर्वरक संयंत्रों का और ५० हजार टन प्रतिवर्ष की क्षमता के अल्युमिनियम संयंत्र का भी प्रावधान किया गया है. ०·५ घनफुट प्रति सेकंड क्षमता वाले १२,९५० उथले तथा १·५ घनफुट प्रति सेकंड क्षमता वाले १२,८५० गहरे नलकूप परियोजना के कृषि खंड में हैं. इन नलकूपों के लिए लगभग ३०० मेगावाट (वैद्युत) की आवश्यकता होगी. परियोजना के अंतर्गत लगभग १५ लाख हेक्टर भूमि की सिंचाई की जायेगी. २२८·२ लाख टन अतिरिक्त कृषि-उत्पादन होगा जिसमें ७८ लाख टन अनाज, १७ लाख टन दालें, ३.५ लाख टन तिलहन और १३० लाख टन गन्ना, आलू और कपास होगी. यंत्रों द्वारा खेती करने पर प्रति हेक्टर ४८१० रुपयों और बैलों की सहायता से खेती करने पर प्रति हेक्टर ४२७१ रुपयों का वास्तविक लाभ होगा.

यंत्रों द्वारा खेती करने में १४०० लाख और बैलों की सहायता से खेती करने में ४७०० लाख आदमी-दिनों (मैन-डेज) का श्रम लगेगा. इसके मतलब होंगे कि यंत्रों द्वारा खेती करने में ३३० दिन प्रतिवर्ष की दर से पांच लाख आदमियों को और बैलों की सहायता से खेती करने में चौदह लाख आदमियों को बारह महीनों के लिए व्यवसाय प्राप्त होगा. आजकल इस क्षेत्र में खेती की संघनता (इंटेंसिटी) १५० प्रतिशत से कम है. इसीलिए ऊपर दिये गये आंकड़ो की तुलना में आधे ही लोगों के पास व्यवसाय है और आबादी के एक बड़े अंश का जीवन-निर्वाह बड़ी कठिनाई से होता

रहा है. परियोजना के आ जाने के बाद उसमें कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय लगभग २,१०० रुपये होगी.

सीमित सम्मिश्र

इस समय प्राप्य तकनीकों को प्रयोग में लाने वाले एक सीमित क्षेत्र वाले सम्मिश्र की जटिलताओं का भी अनुमान किया गया है. इस समय भारत में बनने वाले २०० मेगावाट (वैद्युत) कैंडू रिएक्टरों में लगभग अस्सी प्रतिशत भारतीय सामग्री होगी. अमरीका में टेनेसी वेली प्राधिकारी द्वारा फॉस्फोरस भट्टी का अच्छी तरह विकास किया जा चुका है. इस आधार पर अपने सीमित सम्मिश्र के लिए हमने यह सोचा है कि बिजली संयंत्र में २५० मेगावाट (वैद्युत) वाले दो कैंडू रिएक्टर हों तथा इस क्षेत्र के लिए आवश्यक फॉस्फेटी उर्वरकों के लिए बिजली की भट्टी वाला एक फॉस्फेटी अम्ल-संयंत्र हो. नलकूप भी संयंत्र की बिजली से चलेंगे. वैद्युत अपघटन पर आधारित नाइट्रोजनीय उर्वरक संयंत्र को इस स्कीम में समावेशित नहीं किया गया है, और यह धारणा है कि इन उर्वरकों को समुच्चय मूल्य (पूल प्राइस) पर कहीं और से प्राप्त किया जायेगा. कृषि-उद्योग सम्मिश्र के लिए आवश्यक न होने के कारण अल्युमिनियम संयंत्र को भी सम्मिलित नहीं किया गया है. ऐसी स्कीम के लिए एक हजार करोड़ रुपयों के आसपास पूंजी की आवश्यकता होगी. इसमें वार्षिक व्यय लगभग ४३१.६ करोड़ रुपये होगा. वार्षिक विनियोजन पर वास्तविक प्रत्याय ८१.७ प्रतिशत होगी. पूर्ण सम्मिश्र की अपेक्षा इस वैकल्पिक योजना में विनियोजन पर अधिक प्रत्याय (रिटर्न) का मिलना सम्पूर्ण परियोजना में कृषि की मात्रा में वृद्धि हो जाने के कारण है.

यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रस्ताव में दर्शायी गयी विनियोजन राशि में क्षेत्र विशेष में सड़क निर्माण, नयी रेल लाइन बिछाने और वैगन-ट्रक आदि की प्राप्ति के द्वारा यातायात प्रणाली में सुधार के लिए ११४ करोड़ रुपये; कृषि साधनों के लिए २४० करोड़ रुपये; ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली पहुंचाने तथा नलकूपों के लिए २२० करोड़ रुपये; गोदामों के लिए १०० करोड़ रुपये और किसानों एवं मध्यस्थ एजेंसियों को ऋण के रूप में १३३ करोड़ रुपये सम्मिलित हैं. नये कार्यों की सही गणना करते समय विद्यमान सुविधाओं को भी मान्यता देनी होगी. इस प्रकार क्षेत्र की "उप-रचना" कहे जा सकने वाले मद पर विनियोजन की करीब आधी राशी लगेगी.

परिवाहिकी

इतने बृहत परिणाम की योजना में परिवाहिकी

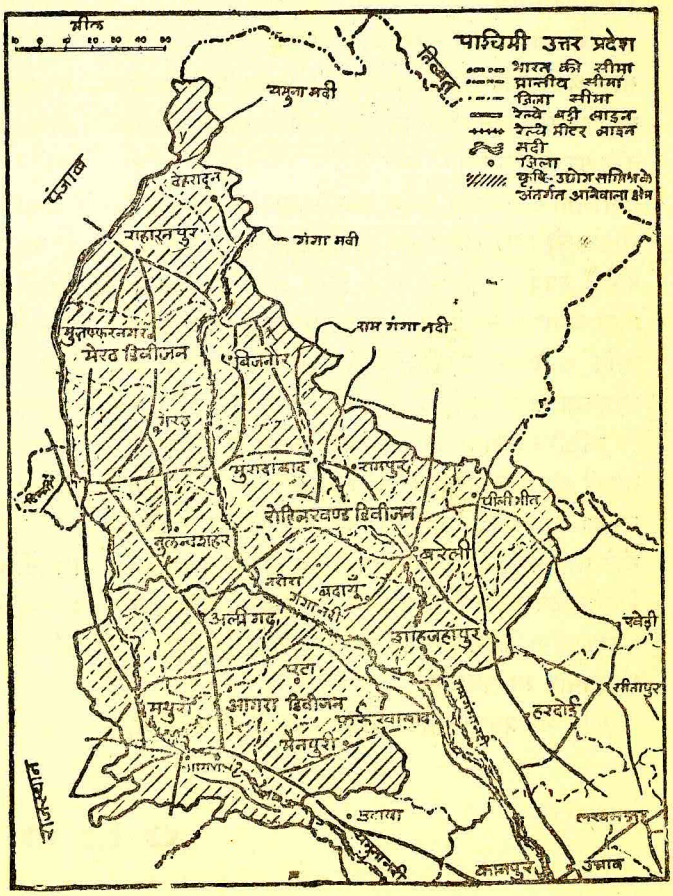

की अनेक कठिनाइयां आयेंगी. सम्मिश्र के अनवरुद्ध और सुचारुपूर्वक संचालन के लिए कच्चे माल की पूर्ति के विश्वसनीय साधन आवश्यक होने तथा उत्पादनों की पूर्ति, संग्रह और वितरण का प्रबंध भी करना होगा.

निर्माणकाल में आसाधारण बड़े आकार और भार वाले विशिष्ट औद्योगिक उपकरणों को सड़क और रेल द्वारा लाने के साथ कई समस्याएं जुड़ी होती हैं. किसी भी बड़ी न्यूक्लीय विद्युत परियोजना में आवश्यक सबसे भारी उपकरण ५०० टन और सबसे बड़ा आकारवाला उपकरण २५ फीट लम्बा, २० फीट चौड़ा और १० फीट ऊंचा हो सकता है जिसके लिए उपयुक्त सड़क, रेल अथवा दोनो का चयन करना होगा और फिर पुल-पुलियाओं आदि के कमजोर भागों को मजबूत बनाने और मोड़ों को चौड़ा करने के लिए पूरे रास्ते का सर्वेक्षण करना होगा.

संचालन काल में कच्चे माल को नियमित रुप से सम्मिश्र में लाने तथा उत्पादनों को बाहर ले जाने की समुचित परिवहन सुविधाओं का प्रबंध करना होगा. मोटे तौर पर यह अनुमान किया है कि सम्मिश्र के तीनों डिवीजनों से संबंधित माल चढ़ाने-उतारने और यार्ड सुविधाओं तथा रेल लाइन क्षमता के कुल कार्यों में २५ करोड़ रुपयों के लगभग खर्च होगा सम्मिश्र की परिवहन आवश्यकताओं को पूरा करने लिए कुछ वैगन आदि खरीदना पड़ेंगी जिसमें ६५ करोड़ रुपये के आसपास खर्चा आयेगा.

अतिरिक्त यातायात को वहन करने के लिए इन सड़कों को ठीक करना होगा. इसमें जो खर्चा आयेगा उसका ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता. मोटे तौर पर हमारा अनुमान है कि करीब १६,००० किलोमीटर सड़क निर्माण कार्य या सड़क जीर्णोद्धार करना पड़ेगा जिसके लिए १६ करोड़ रुपये का खर्च आयेगा.

संग्रहागार आवश्कताएं

कृषि में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं जैसे बीज, और कई कृषि उत्पादनों आदि के संग्रह की सुविधाओं की व्यवस्था वितरण की विभिन्न अवस्थाओं पर करनी होगी. शिखर आवश्यकता के समय कुल अनुमानित संग्रह आवश्यकता ४० लाख टन होगी. इसके लिए करीब सौ करोड़ रुपयों की लागत होगी जिसमें आलू के लिए प्रशीतन सुविधाएं सम्मिलित हैं. किंतु गन्ने और कपास को फैक्ट्रियों में संग्रहित करने का प्रावधान नहीं है.

तकनीकी तथा आर्थिक संभावना-अध्ययनों पर कृषि उद्योग सम्मिश्र की यह परियोजना चाहे जितनी आकर्षक क्यों न लगे, इसकी सफलता के लिए दक्ष प्रबंध किसी भी अन्य उपादान से कम महत्वपूर्ण नहीं है. शीघ्र निर्णय करना, निर्माण और उत्पादन स्कीमों की कल्पनाशील समयावलि परियोजना का न्यूनतम समय में परिपालन, उच्च संयंत्र तथा लोड फैक्टर, कर्मचारियों और सामग्री का उचित तरीके से उपयोग ये कुछ ऐसे पहलू है जिससे सफलता और असफलता के बीच का अंतर स्पष्ट होता है और इस संदर्भ में कृषि उद्योग समिश्र कोई अपवाद नही है.

कृषि-उद्योग अध्ययन दल द्वारा किये गये विश्लेषण से यह पता लगा है कि किस प्रकार न्यूक्लीय ऊर्जा देश के आर्थिक विकास में सहायक हो सकती है. कई क्षेत्रों मे सिर्फ न्यूक्लीय ऊर्जा ही एक मात्र व्यवहारिक उत्तर है. पहले से ही संभाव्य बातों को ध्यान में रखके योजना बनाकर और उसके सही परिपालन द्वारा खाद्य सामग्री के बढे हुए उत्पादन के रुप में यथेष्ठ अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकेंगे. इस प्रकार देश को आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर किया जा सकेगा. जितनी शीघ्रता से इस प्रकार की परियोजनाओं को प्रारंभ किया जायेगा हम उतने ही अधिक एक सुनहरे भविष्य के प्रति आश्वस्त हो सकेंगे.

प्रस्तुत कर्ता
माधव सक्सेना

ooo

मानव शरीर की इकाई बनाम सेल की खोज

लेखक :- डा. दुर्गासिंह, भाषा अनुसंधान परिषद, बिजनौर.

सत्रहवी शताब्दी में रॉबर्ट हुक ने अपनी कल्पना के आधार पर यह उद्घोष किया कि जिस प्रकार भवन छोटी-छोटी ईंटों से बनता है उसी प्रकार यह शरीर भी एक प्रकार की छोटी-छोटी इकाइयों से बना है, जिनको सेल नाम दिया गया है. इस समय तक वैज्ञानिक जगत में सेल के विषय के संबंध में कुछ ज्ञात नहीं था. काफी समय तक यह केवल एक धारणा मात्र बनी रही. शताब्दियों बाद यह धारणा सत्य रूप में परिणित हुई.

शेष विश्व के लिए यह धारणा भले ही चमत्कारी या अद्भुत प्रतीत हुई हो, किंतु भारत के लिए उस उस समय भी यह कोई नयी बात नहीं थी. ईसा के तीन शताब्ती पूर्व शरीरवत्ता चरक ऋषि ने पूर्वानुक्रम से प्रयोग सिद्ध तथ्य को अपनी भाषा में इस प्रकार व्यक्त किया था. "स्रोतसां समुदाय पुरुषम्" यह मानव शरीर स्त्रोतों का समूह है, जिनकी संख्या अनंत है.

संस्कृत साहित्य में अवस्था और प्रयोगों के अनुसार भिन्न भिन्न स्थलों पर सेल के अनेक पर्यायवाची शब्दों को प्रयुक्त किया गया है. स्रोतस् कोश, हृदय, अण्ड, बीज, शरीर परमाणु, वीर्य, कुमार, प्राण तथा पुरुष आदि हैं.

युरोपीय भाषाओं में इसी को सेल, साइटस कितस् कियेल आदि नामों से पुकारा जाता है. सेल शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'स्रु' धातु से तथा साइटस् की संस्कृत के 'स्रोतस' शब्द से हुई है. युरोपीय भाषाओं में '**C**' का उच्चारण 'स' तथा 'क' होता है. इसी उच्चारण प्रत्यावर्तन के कारण साइटस् को कितस् कहा गया और सेल को कियेल.

ऐसा प्रतीत होता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय या उसके आसपास अनेक भारतीय ग्रन्थ ग्रीस में पहुंचे और सम्भवतः उन्हीं के अध्ययन से ग्रीक भाषा में यह स्रोतस शब्द साइटस् के रुप मे प्रचलित हुआ और 'स्रोतसा समुदयं पुरुषम्' इसी भाव को कालान्तर में रॉबर्ट हुक ने अपने शब्दों मे उद्घोषित किया.

स्रोतस् और साइटस् शब्द की भाषा-वैज्ञानिक सभ्यता के आधार पर यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है कि स्रोतस् शब्द का प्रावजन भारत से युरोप में हुआ है, और इस के साथ ही साथ शरीर कोशिकाओं (सेलों) का समूह है, यह भाव भी भारत से युरोप में प्रचलित हुआ.

भारत के प्राचीन वैज्ञानिक एवं नवीन पाश्चात्य वैज्ञानिक इस विषय में एक मत हैं कि सृष्टि के आरम्भ में सजीव सृष्टि सेलों के रुप में बनी, फिर इन्ही सेलों से विभिन्न प्रकार के प्राणियों का सृजन हुआ. इतना ही नहीं सेल के क्रमिक विकास में भी दोनों का एक मत है. यहां पर केवल भारतीय विचार प्रस्तुत किया जा रहा है.

आपो हि कललं भूत्वा यत् पिण्डस्थानुकम् भवेत् ।
तदेव व्यूह मानत्वात वीजत्वमधि गच्छिति ॥

(वृक्षायुर्वेद)

सृष्टि के आदि में यह पृथ्वी जल से व्याप्त थी. जल में सूर्य के ताप व पृथ्वी स्थित ठोस कणों में रासायनिक परिवर्तन हुए और इस प्रकार 'आप' की उत्पत्ति हुई.

आपो वा इदमग्रे सलील भासीत् (त. वर.)

यह आप नामक द्रव्य कुछ और गाढ़ा हुआ और कलल जैसे द्रव्य की रचना हुई. इस कलल जैसे द्रव्य में ऊपरी भाग पर झिल्ली जैसे पदार्थ बनने लगा और मध्य में पिण्ड बनने लगा. इस पिण्ड में अनेक छोटे-छोटे कण विद्यमान थे. जिनको जीन कहा जाता है. कुछ समय बाद ये कण एक विशिष्ट प्रकार के क्रम में आबद्ध हुए, जिन्हें व्यूह (क्रोमोजोमे) कहा जाता है. झिल्ली से आवृत इन सब द्रव्य से मिलकर एक कोश का रुप बन

गया, जिसे बीज कहा गया. इस प्रकार निर्मित विभिन्न प्रकार के बीजों से विविध प्रकार के पौधों का विकास हुआ.

वनस्पति जगत के पश्चात् जन्तु जगत की सृष्टि हुई है, इस तथ्य में सभी वैज्ञानिकों का विश्वास है. भारत के प्राचीन वैज्ञानिकों ने वनस्पति सृजन के पश्चात् जन्तु जगत की रचना होने में जो समय लगा है, उसका वर्णन किया है.

औषधि, अर्थात वनस्पतियों की उत्पत्ति जन्तु की अपेक्षा तीन महायुग पूर्व हुई है. पुरातन गणना के अनुसार एक महा युग (सत् युग+त्रेता युग+तथा कलियुग) को मिला कर कहा जाता है. इन चारों युगों अर्थात एक महा युग का काल ४,३२,००,००० वर्ष होता है. इस प्रकार इस का तिगुना काल, १२,९६,००,००० वर्ष हुआ इस गणना के अनुसार वनस्पति सृष्टि तथा जन्तु सृष्टि का मध्यवर्ती काल १२,९६,००,००० वर्ष आंका गया है.

औषधियों की उत्पत्ति के अनुसार जन्तु सेलों की उत्पति के लिए आवश्यक सामग्री प्रकृति में उत्पन्न होने लगी थी जिसको अन्न कहा गया है. (औषधियों अन्न) और इस अन्न से जन्तु सेल की उत्पत्ति हुई (अन्नात् पुरुषम्.) इस प्रकार के सेलों के निर्माण के लिए भी 'आप' नामक द्रव्य की आवश्यकता थी अतः प्रारम्भ में आप का निर्माण हुआ और फिर इसी से क्रमानुसार सेल के अवयवों का निर्माण होकर जन्तु सेल या वीर्य का निर्माण हुआ.

प्रारभ में इस प्रकार के एक या दो सेल ही नहीं बने अपितु करोड़ों और अरबों सेलों की रचना हुई.

आज कल वैज्ञानिकों ने सेल की रचना और उसके कार्य का अध्ययन बहुत विस्तार से कर लिया है और यह आवश्यकता अनुभव हुई कि इस को विज्ञान की एक अलग शाखा मान लिया जाये. तदनुसार विज्ञान की इस शाखा का नाम साइटोलोजी रक्खा गया.

प्राचीन मत के अनुसार सेल की रचना में अनेक द्रव्य व अवयव बताये गये हैं सलिल, आप, फेन, मृद, कलाल, सिक्ता, शर्करा, अश्पन, हिरण्य जीन, अक्षार, पिण्ड, व्यूह, कल पक्व तथा अपक्व द्रव्य, द्रव्य, अग्नि केंद्र आदि.

प्राणियों की श्रेणी के अनुसार सेल विभिन्न प्रकार के हैं, और इसी प्रकार कार्य वैशिष्ठ्य के अनुसार एक प्राणी में भी अनेक प्रकार के सेल पाये जाते हैं. इन विभिन्न प्रकार के सेलों की रचना में न्यूनाधिक अन्तर पाया जाता है, और इसी प्रकार इन की आकृतियों में भी विविधता पायी जाती है सप्त धात्वीय शरीरों में पाये जाने वाले सेलों की आवृतियां प्रायः दोनों मतों में एक जैसी मानी गयी है.

सेल से सेल की उत्पत्ति विभाजन द्वारा होती है. इस विभाजन की प्रक्रिया में भी विशेष प्रकार का अन्तर रहता है. ये विभाजन मुख्यतः दो प्रकार के माने जाते हैं. किन्तु इन के कारण के विषय में आज कल मतभेद है. प्राचीन वैज्ञानिकोंने इस के मुख्यतः तीन कारण बताये हैं. वायु कर्म तथा स्वभाव (तेषां संयोग विभागे वायु कर्मस्वभावश्च). इन्हीं तीनों कारणों से सेलों में विभिन्न प्रकार के विभाजन सम्पन्न होते हैं.

सेल एक प्राणिवान द्रव्य है. मानव हृदय के समान इसमें प्रति क्षण गति होती रहती है. इसकी यह गति स्वोद्भूत है. यह बाहर से भोजन प्राप्त करता है और इस भोजन को पचाता है, इसमें कुछ अंश यह अपने निर्माण मे लगाता है और कुछ बाहर निकाल देता है. मानव शरीर में एक प्रकार के सेल से निष्कासित अपद्रव्य उसी प्रकार के सेल का भोजन बनता है. इस प्रकार एक छोटा सेल भोजन पचा कर अपनी जीविका चलाता हुआ पूर्णत्व को प्राप्त होता है. शनै शनै मानव देह के समान यह क्षीण होता रहता है. अपनी आयु पूरी कर सेल समाप्त हो जाता है. अपनी मृत्यु से पहले सेल न मालूम कितने सेलों को जन्म दे चुका होता है. यह क्रम प्राणी शरीर में जीवन पर्यंत चलता है. इन सब परिवर्तनों को शास्त्रकार ने भाव नाम दिया है और इनकी संख्या ६ बतायी है, 'प्रियत्व जननवर्धन परिणाम क्षाय नाशः षड़भावा, (मुदगलो पनिषद).

प्रियत्व, जनन वर्धन परिणाम, क्षाय तथा नाश ये ही भाव वर्तमान वैज्ञानिकों ने सेल के बारे में माने ह.

वर्तमान वैज्ञानिकों ने अब तक प्राणियों की ३० लाख योनियों का पता लगाया है. भारत में ८० लाख योनियों का पता लग चुका था. इन योनियों की उत्पत्ति

किस प्रकार होती है, यह एक गहन विषय है. इस विषय का अध्ययन करने के लिए प्राणि विज्ञान की एक अलग शाखा स्थापित की गयी है, जिसे प्रजातिशास्त्र कहा जाता है. प्रजाति शास्त्रज्ञों का कहना है कि प्रजनन सेल में स्थित जीनों में परिवर्तन आते रहने पर हजारों लाखों पीढ़ियो बाद एक संजाति एक भिन्न प्रकार की प्रजाति में परिणित हो जाती है. इसी प्रकार के उत्तरोत्तर परिवर्तनो की श्रृंखला में से मानव का विकास हुआ है. उसका निकटतम पूर्वज बन्दर या वनमानुष है.

भारतीय विचारक इस प्रकार के विकास में विश्वास नहीं करते. उनका कहना है कि जीनों में परिवर्तन करने से एक प्रकार के प्राणी से उसकी एक प्रकार की किस्म का निर्माण तो हो जाता है किन्तु एक भिन्न प्रकार की प्रजाति का निर्माण नहीं हो सकता है. विकास वादी डाल्टन के सिद्धान्त से प्राचीनों का मत मेल नहीं खाता है. एक जाति का निर्माण दूसरी जाति से नहीं हुआ है अपितु प्रत्येक जाति के अपनी निश्चित प्रकार के सेलों का निर्माण प्रकृति में सृष्टि निर्माण के उत्तरोत्तर क्रम से हुआ है. प्रकृति वैविध्य के कारण ही विभिन्न प्रकार की जातियों का निर्माण हुआ है.

प्रायः सभी जन्तुओं में विभिन्न प्रकार की संभोग क्रियाओं द्वारा डिम्ब तथा वीर्य का एकीकरण होता हे. इस एकीकरण में एक डिम्ब या मातृ-सेल तथा एक ही वीर्य या पितृ सेल रहते हैं. किन्तु इस संयोजित द्रव्य से पुरुष या स्त्री, किसी भी लिंग का बच्चा उत्पन्न हो सकता है, ऐसा क्यों होता है ? इसका उत्तर अर्वाचीनों और प्राचीनों ने लगभग एक जेसा ही दिया है.

प्राचीन शरीर शास्त्रियों ने इस विषय पर जो प्रयोग या अनुभव किये हैं उनके आधार पर उनका कहना है कि :–

पितु, रेतोऽ ति रिच्यात् पुरुषो भवति ।
मातुः रेतोऽ ति रिच्यात् स्त्रियो भवति ।।
उभयो बीज तुल्यात् नपुंसको भवति ।। (गर्भोप निषद्)

पिता के एक वीर्य कण तथा माता के एक रज कण मिलने से एक बुद्‌बुद् का निर्माण होता है. यहां यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वीर्य व रजकण में पितृ जीन तथा मातृ जीन दोनों ही विद्यमान रहते हैं. इन्हीं जीन कणों की प्रबलता पर पितृ गुणों व मातृ गुणों का प्राद्रुभाव बच्चे में होता हैं, और किसी एक प्रकार के प्रजनन अंगीय जीन कणों की प्रबलता पर बच्चे के लिंग का निर्धारण रहता है. यदि दोनों प्रकार के प्रजनन अंगीय जीन समान हों तो फिर बच्चा नपुंसक होता है.

जीन कणों द्वारा पितृ व मातृ गुणों उद्‌बहन, इन पर बाहम रेतृव्य अवस्थाओं एवं खाद्यों का प्रभाव, पिता व माता से सन्तान में जीन कणों द्वारा जाने वाले रोगों आदि का अध्ययन करने के लिये जीन शास्त्र नामक एक अलग शाखा प्राणी शास्त्र के क्षेत्र में स्थापित की गयी है. प्राचीन ग्रन्थो में (वेदों से लेकर पुराण साहित्य तक) रेतस् शब्द का जीन के लिऐ प्रयोग हुआ है किन्तु इस शब्द के अर्थ का क्षेत्र निर्धारित नहीं हो पाया. रेतस् की रचना, कार्य तथा प्रभाव आदि की सामग्री को संकलित किया जाये तो जीन शास्त्र जैसा एक अलग शास्त्र दिखायी देने लगेगा. ● ● ●

विज्ञान केंद्रों से

अगले अंक से एक नया स्तंभ प्रारंभ कर रहे हैं इसमें हम देश की विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं तथा अनुसंधान शालाओं में हुई नयी उपलब्धियों की जानकारी प्रस्तुत करेंगें, इस संदर्भ में वैज्ञानिक केंद्र अधिकारियों से हमारा अनुरोध है कि वे हमें आवश्यक जानकारी सुलभ करने में सहायक हों.

संपादन मंडल

माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक्स क्यों और क्या ?

काशीनाथ झा. टेक्नीकल फिजिक्स प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, बंबई.

जब हम चंद्रयान की चर्चा करने लगते हैं तो जिस यंत्र की ओर हमारा ध्यान सर्वप्रथम जाता है वह है रॉकेट. चंद्रयान को चांद तक पहुंचाना एक गेंद फेंकने की तरह है. आप गेंद को ऊपर फेंकते हैं तो वह ऊपर जाती है और थोड़ी देर में लौट आती है. जरा जोर से फेंकिए तो थोड़ी और ऊपर जायेगी, लेकिन वह फिर वापस आजायेगी. परंतु इसी प्रकार निरंतर अधिक जोर से फेंकते जाने पर एक ऐसी स्थिति आयेगी जब कि गेंद कभी वापस नहीं आयेगी और अंतरिक्ष में या तो पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काटने लगेगी या सूर्य के. दूसरे शब्दों में, वेग की तीव्रता के अनुसार गेंद या तो पृथ्वी का उपग्रह बन जायेगी या सूर्य का एक ग्रह.

आप अनुमान नहीं लगा सकते कि चंद्रयान जिसका वजन टनों में होता है, को चांद तक फेंकने के लिए कितनी शक्ति की आवश्यकता पड़ी होगी. अमेरिका के सैटर्न ५ नामक रॉकेट जिसने चंद्रयान को प्राथमिक गति दी थी, ७५ लाख पाउंड का दबाव पैदा कर सकता है.

परंतु सिर्फ अधिक शक्ति के रॉकेट के निर्माण से ही चांद पर नहीं पहुंचा जा सकता. चंद्रयान के अंदर एक मस्तिष्क (जटिल यंत्र समुदाय) का होना आवश्यक है. यदि रॉकेट चंद्रयान का वाहन है तो चंद्रयान के अन्दर इलेक्ट्रॉनिक उपकरण उसका मस्तिष्क. जब आर्मस्ट्रांग, एल्ड्रिन और कोलिंस चंद्रयात्रा पर चले तो उनके साथ उनका पूरा नगर था. उनकी अपनी स्ट्रीट लाईटिंग की व्यवस्था थी, अपनी संचार व्यवस्था थी यहां तक कि गंदगी साफ करने वाली नालियों (सीवेज) की व्यवस्था भी थी. उनको एक सप्ताह तक चंद्रयान के अंदर तो रहना ही था साथ ही साथ उन्हें पृथ्वी से संचार व्यवस्था बनाये रखनी थी जब एल्ड्रिन और आर्मस्ट्रांग चांद पर एक दूसरे से बात करते थे, उस समय भी रेडियो यंत्र की आवश्यकता पड़ती थी. चांद पर वायुमंडल न रहने के कारण, हम और आप पृथ्वी पर जिस प्रकार वार्तालाप कर लेते हैं, चांद पर वैसा संभव नहीं था. चंद्रयात्री परस्पर वार्तालाप करने के लिए तथा पृथ्वी से संपर्क स्थापित रखने के लिए कई रेडियो, टेलिविजन-संप्रेक्षण यंत्र ले गये थे. उनके ताप तथा हृदय की धड़कनों का लेखा जोखा भी रेडियो ट्रांसमीटर द्वारा पृथ्वी तक प्रेषित किया जाता था. अधिकांशतः चंद्रयान की देखभाल भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण ही करते थे. चंद्र यात्रियों की सहायता के लिए छोटे आकार के बहु-उपयोगी कम्प्यूटर भी उनके साथ थे.

अगर आपने रेडियो स्टेशन या पुलिस की गाड़ियां, जिनमें बेतार के तार लगे होते हैं देखी हैं, तो सहज अनुमान लगा सकते हैं कि इतने सारे

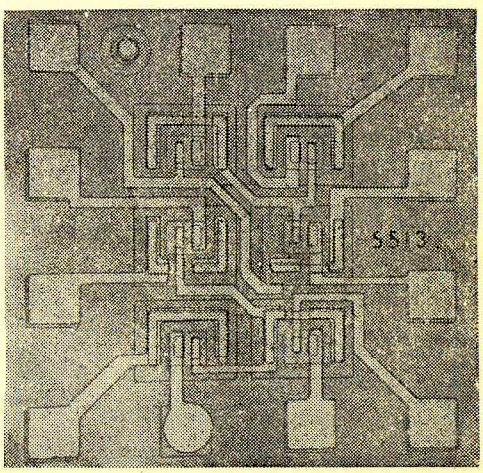

माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक सर्किट; आकार १० मि. मीटर वर्ग

इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को छोटे से चंद्रयान में किस प्रकार समाया गया होगा. यह तभी संभव हो सकता है जब कोई जादूगर आकर इन उपकरणों को छोटा कर दे या चंद्रयान को ही एक विशाल भवन के बराबर बना दे. चंद्रयान को बड़ा बनाने पर काफी शक्तिशाली रॉकेट की आवश्यकता पड़ती, अतः ईंधन की परिमेयता को दृष्टिगत करते हुए, चंद्रयान को एक सीमा तक ही विशाल बनाया जा सकता है. अतः वैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को ही छोटा बनाना उपयोगी समझा.

वैज्ञानिकों के सामने समस्या थी कि इन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को छोटा से छोटा भी बनाया जाये और उपकरणों की विश्वसनीयता का ह्रास भी न होने दिया जाये. विद्युत्परिवर्तक (ट्रांसफार्मर) तथा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण सभी भारी होते हैं. बार्डिन तथा सोक्ले द्वारा निर्मित जर्मेनियम नामक तत्व के मणिभों (क्रिस्टल) का ट्रांजिस्टर, वाल्व तथा विद्युत-परिवर्तक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के मिनीचराइजेशन का प्रथम चरण सिद्ध हुआ है. ये लघु ट्रांजिस्टर वही कार्य करते हैं जो भारी वाल्व. इनके उपयोग के लिए उच्च विभव (हाइ वोल्टेज) की भी आवश्यकता नहीं पड़ती. इनके लिए छोटी-छोटी बैटरियों से ही यथेष्ट शक्ति मिल जाती है - भारी भरकम ट्रांसफार्मर की आवश्यकता नहीं रहती. ये ट्रांजिस्टर छोटे और ठोस होने के कारण टूटते भी नहीं. रॉकेट उड़ान के समय उत्पन्न प्रकंपन से भी इनका कुछ नहीं बिगड़ता जबकि कांच के बने वाल्व टूट सकते हैं. इन ट्रांजिस्टरों के ही कारण आप मनचाहे स्थानों पर, ट्रांजिस्टर रेडियो से मधुर एवं मोहक संगीत सुन सकते हैं.

ट्रांजिस्टर को बनाने के लिए अति शुद्ध जर्मेनियम तथा सिलिकॉन (जर्मेनियम सदृश एक अन्य तत्व) के मणिभों की आवश्यकता पड़ती है. यदि किसी वस्तु में अशुद्धि की मात्रा १ प्रतिशत से कम होती है तो हम उसे सामान्यतः शुद्ध मान लेते हैं. पर ट्रांजिस्टर बनाने के लिए इतनी अशुद्धि तो बहुत ही अधिक होती है. ट्रांजिस्टर ग्रेड जर्मेनियम या सिलिकॉन में अशुद्धियों की मात्रा हजार या लाख नहीं बरन् अरबों में एक होती है अर्थात जर्मेनियम या सिलिकॉन के एक अरब (अर्थात १,००,००,००,०००) परमाणुओं में अशुद्धि की मात्रा सिर्फ एक या दो परमाणु से अधिक नहीं होनी चाहिए.

तत्वों को इतना शुद्ध करने की आवश्यकता इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी – यहां तक कि दवाइयां भी, जिनमें किंचित अशुद्धि हमारी जान तक ले सकती है, इतनी शुद्ध नहीं होती हैं. रासायनिक विधियों द्वारा जर्मेनियम तथा सिलिकॉन की शुद्धता का परिमाण एक लाख में एक कर दिया जाता है. फिर भौतिक विधि, जोन मेल्टिंग द्वारा इनको और शुद्ध करके ट्रांजिस्टर के उपयोग के योग्य बनाया जाता है. इस अवस्था में जर्मेनियम या सिलिकॉन, मणिभों के रुप में नहीं होते और बिना मणिभ रुप में लाये इनसे ट्रांजिस्टर नहीं बन सकता. अत्यंत जटिल विधि द्वारा इसे मणिभ के रुप में लाया जाता है. फिर इन मणिभों में विशिष्ट तत्व, अशुद्धि के रुप में निश्चित मात्रा में मिलाये जाते हैं जिस से ट्रांजिस्टर बन जाता है.

ट्रांजिस्टर के आविष्कार ने इलेक्ट्रॉनिक उपकरण का भार और आकार न्यून तो कर दिया, पर इतना नहीं कि इनका उपयोग उपग्रहों एवं चंद्रयानों में हो सके. ट्रांजिस्टर तकनीकी पर ही आधारित एक नये तकनीक का जन्म हुआ जिसके कारण चंद्रयान में इतने सारे इलेक्ट्रॉनिक उपकरण रखे जा सके हैं और इसका नाम है माइक्रोइलेक्ट्रॉनिकी.

ट्रांजिस्टर, अवरोधक (रेजिस्टर) तथा कैपेसिटर, किसी भी इलेक्ट्रॉनिक उपकरण के मुख्य अग होते हैं. ये विभिन्न विधियों से बनाये जाते हैं और अलग अलग आकार के धारकों (कंटेनर्स) में आते हैं इन अवयवों (कम्पोनेंटस) का असली हिस्सा तो पूरे आकार का सौवां या उससे भी कम भाग होता है. यह सोचा गया कि क्यों नहीं ट्रांजिस्टर, कैपेसिटर और अवरोधक (रेजिस्टर) को एक ही साथ बनाया जाये और उन्हें एक ही डिब्बे में बंद कर दिया जाये ? इन तीनों अंगों को एक साथ बनाकर तथा उनको एक ही डिब्बे में बंद कर के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण अपने वजन तथा आकार दोनों में घटकर इतने छोटे हो गये कि उन्हें देख

-ने के लिए माइक्रोस्कोप की जरूरत पड़ने लगी.

जैसा ऊपर कहा गया है ट्रांजिस्टर तकनीक तथा माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक तकनीक मूलत: एक ही है. अन्तर है तो केवल आकार का और एक ही साथ उसी विधि से बनाये अवरोधक (रेजिस्टर) तथा कैपेसिटर का.

आकार के छोटे होने के कारण बहुत कठिनाइयां उत्पन्न हुई. माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक के अवयवों का आकार कुछ माइक्रोन (एक सें.मी. के दस यज़ारवें हिस्से) के बराबर है. यही नहीं दूसरा अवयव पहले अवयव से केवल कुछ ही माइक्रोन की दूरी पर होता है. माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक सामान सस्ता बने, इसके लिये एक साथ सैकड़ों माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक सरकिट बनाये जाते हैं. यदि किसी प्रकार एक माइक्रो-सरकिट का हिस्सा दूसरे माइक्रो-सरकिट से मिल जाये-और जब दूरी इतनी कम है तो ऐसा होना असंभव नहीं-तो सैंकड़ो माइक्रो सरकिट खराब हो सकते हैं. फोटोग्राफी की सहायता से वैज्ञानिक अब इस प्रकार की त्रुटियों को क कर देते हैं.

ट्रांजिस्टर तथा माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक तकनीक में सफाई की व्यवस्था जितनी भी हो उतनी ही कम है. जर्मेनियम तथा सिलिकॉन कितना शुद्ध होना चाहिये यह पहले ही बताया जा चुका है. यही नहीं जिन कमरों में माइक्रो-सरकिट बनाये जा रहे हैं, उसे धूल-कण मुक्त होना चाहिये. हवा में तैरते हुए धूल-कण का आकार कभी कभी कई माइक्रोन हो सकता है. अगर ये धूल-कण माइक्रो-सरकिट के अवयव पर बैठ गये तो यंत्र का बनना कठिन हो जाएगा अत: जहां माइक्रोसर्किट बनाये जाते हैं वहां ऐसे कक्षों की जरूरत होती है जो धूल-कण से मुक्त हो तथा ताप एवं वाष्प नियंत्रित हों. इन कक्षों की स्वच्छता अच्छे से अच्छे शल्य कक्षों (ऑपरेशन थियेटरों) की स्वच्छता से भी बढ़ चढ़ कर होती है. यही नहीं इस कक्षा के अन्दर काम करने वाले टेकनीशियन भी किसी नर्स या डाक्टर जैसे ही लगते हैं.

दो मुख्य क्रियाएं जो माइक्रो-सर्किट बनाने के लिये आवश्यक हैं वे हैं (१) विसरण (डिफ्युजन) तथा (२) वैद्युतीय संपर्क (इलेक्ट्रीकल कॉन्टेक्ट) स्थापित करना. विसरण द्वारा सिलिकॉन में अथवा जर्मेनियम में निश्चित मात्रा में अशुद्धि डाली जाती है. यह क्रिय साधारणतह: १००० डिग्री सें. २३०० डिग्री सें. पर सम्पन्न की जाती है. यही नहीं इस तापक्रम को ०.१ डिग्री सें. के भीतर निबंत्रित रखना पड़ता है. इस तरह का यंत्र बनाना यथेष्ठ कठिन था. परन्तु अब तो अच्छी प्रयोग शालाओं में इसे बनाना साधारण बात हो गयी है.

माइक्रो-सर्किट के अन्दर विभिन्न अवयवों को एक दूसरे से निश्चित ढंग से वैद्युत संपर्क करना पड़ता है. इसके लिये स्वर्ण के पतले पर्त की आवश्यकता पड़ती है. स्वर्ण को शून्य वातावरण में वाष्पित किया जाता है और माइक्रो-सर्किट के विभिन्न अवयवों में वैद्युतीय सम्पर्क स्थापित किया जाता है.

अंत में इन माइक्रो-सर्किटों को जोड़कर इलेक्ट्रॉनिक उपकरण तैयार किये जाते हैं. इस कारण माइक्रो सर्किट में पतले तार जोड़े जाते हैं. इतने छोटे माइक्रो सर्किट में पतले तारों का जोड़ना भी एक समस्या है. पर लेसर बीम तथा इलेक्ट्रोन पुंज (इलेक्ट्रान बीम) द्वारा अब यह संभव हो गया है.

इतनी सारी समस्याओं को हल करने के पश्चात ही आर्मस्ट्रांग तथा एल्ड्रिन का चांद पर उतरना सम्भव हो सका. माइक्रोइलेक्ट्रॉनिक तकनीक की उपादेयता केवल अंतरिक्ष यात्रा तक ही सीमित नहीं है इसका उपयोग जिन्दगी के हर क्षेत्र में हो रहा है. बहरों के लिये छोटे से छोटे इयर-फोन की संभावना इस विज्ञान के कारण ही हो सकी है. जापान में प्रयत्न किया जा रहा है कि जेबी रेडियो की तरह जेबी टेलीविजन बनाया जाय. बिना माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक तकनीक के यह विचार कभी संभव नहीं था.

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र ट्रांबे, टाटा संस्थान बम्बई, सेंट्रल रिसर्च इन्स्टीटयूट पिलानी तथा अन्य कई प्रयोगशालाओं में इस तकनीक पर तेजी से काम हो रहा है. भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में तो इस तकनीक केविकास के लिये जिन यंत्रो की आवश्यकता पड़ती है उसका भी निर्माण तथा विकास हो रहा है.

बहुलक पानी बनाने की विधि

डा. प्रताप कुमार माथुर, रसायन प्रभाग, भा. प. अ. केंद्र, बम्बई.

वैज्ञानिकों ने एक नए प्रकार के पानी, जिसे असामान्य या बहुलक पानी, की संज्ञा दी गयी है, का हाल ही में आविष्कार किया है. इस पानी की संरचना के बारेमें तो अभी भी अटकलें ही लगायी जा रही हैं. परन्तु ऐसा अनुमान है कि यद्यपि इसकी रसायनिक संरचना साधारण पानी से मिलती जुलती है, भौतिक गुणों की दृष्टि से यह पानी साधारण पानी से सर्वथा भिन्न है.

ब्रिटिश वैज्ञानिक जॉन फिने द्वारा बतायी हुई निम्नलिखत विधि से किसी भी स्कूल की प्रयोगशाला में यह पानी थोड़ी मात्रा में आसानी से बनाया जा सकता है. एक इंच लम्बी तथा 20 माइक्रोन (1 माइक्रोन = 10^{-4} सें.मी.) व्यास वाली पाइरेक्स कांच की लगभग 200 संकीर्ण नलिकाएं एक कांच के बने हुए प्याले में रखें. इतनी अधिक संख्या में नलिकाएँ लेना इसलिए आवश्यक है कि इनमें से केवल 20 % में ही असामान्य जल के बनाने में सफलता प्राप्त हो पाती है. एक दूसरे छोटे प्याले में पोटेशियम सल्फेट का संपृक्त घोल बनायें. यह घोल सामान्य तापक्रम पर साधारण पानी का लगभग 97% वाष्पदाब (वेपर प्रेशर) देगा. दोनों कांच के प्याले एक छोटे से निर्वात शोषित्र (वेक्युम डेसीकेटर) में रखदें. ध्यान रहे कि उबलने के समय उछलने से संकीर्ण नलिकाओं पर घोल के छींटे न पड़े. इसके लिए नलिकाओं के मुंह पर एक छनना कागज (फिल्टर पेपर) रखना आवश्यक है. तत्पश्चात् इस निर्वात शोषित्र के साथ एक ऐसा निर्वात पम्प जोड़ें जो वायु के दबाव को पारे के पांच मिली मीटर तक कम करने की सामर्थ्य रखता हो. इस पम्प द्वारा जितनी वायु बाहर निकाल सकते हों निकाल दें. घोल के उबलने के बाद भी कुछ देर तक वायु का निकालना जारी रखें. अब निर्वात शोषित्र का मुंह बंद कर दें. इस निर्वात शोषित्र को हवा के तेज बहाव तथा तापक्रमों के अधिक परिवर्तनों से बचा कर 7 से 10 दिन तक रखें. इसके बाद निर्वात शोषित्र को खोलें और सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा नलिकाओं की परीक्षा करें. केवल उन नलिकाओं को जिनमें द्रव के स्तंभ बन गए हैं, छांट लें और संभाल कर रखें. इन नलिकाओं में ही असामान्य जल प्राप्त होगा.

इन नमूनों पर कई प्रयोग किए जा सकते हैं. उदाहरणतः सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा करते समय ही द्रव के स्तंभ को पम्प द्वारा बाहर नकालने की कोशिश करें. ज्योंही सामान्य पानी बाहर निकलेगा द्रव का स्तंभ बहुत शीध्रता से संकुचित होगा. अब जो बहुत थोड़ा सा द्रव संकीर्ण नलिका में बच रहेगा वह स्वच्छ असामान्य जल होगा.

असामान्य पानी को एक दूसरी विधि द्वारा भी देखा जा सकता है. नलिकाओं के दोनो सिरे बंद करदें. फिर इन्हें एसीटोन तथा कार्बन डाइ आक्साईड के मिश्रण से भरे बर्तन में ठंडा करें. अब सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा इसका प्रभाव देखें. सामान्य तथा असामान्य पानी एक दूसरे से विलग होते हुए दृष्टिगोचर होंगे और यदि तापक्रम काफी कम हुआ तो दोनो अवयवों में से सामान्य अवयव जमता हुआ दृष्टिगोचर होगा. यह तो हम जानते ही हैं कि असामान्य अथवा बहुलक पानी जमने से साफ इन्कार करता है.

इसे भी समझिए

प्रकाशज विद्युत

डा. रघुबीर शरण शर्मा भौतिक विभाग, विज्ञान संकाय काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी.

जिस प्रकार किसी धातु-पत्र से इलेक्ट्रॉन के उत्सर्जन के लिए तापीय प्रभाव (कारण) की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार कम तापक्रम पर भी धातु-पत्र से उस पर प्रकाश की क्रिया द्वारा इलेक्ट्रॉन का उत्सर्जन हो सकता है. इस प्रक्रम को प्रकाशज प्रभाव कहते हैं प्रकाश की प्रकृति विद्युत चुम्बकीय होती है, और पदार्थ प्रोटान एवं इलेक्ट्रॉन से बना होता है. अत: प्रकाश और पदार्थ में प्रतिक्रिया होने पर पदार्थ में अवश्य कुछ विद्युत परिवर्तन होता है. इस घटना को तीन भागों मे विभाजित किया जा सकता है.

१- सतह प्रकाश – विद्युत प्रभाव.

२- प्रकाश चालकता.

३- प्रकाश वोल्टीय प्रभाव

१ – सतह प्रकाश – विद्युत प्रभाव :–

सतह प्रकाश-विद्युत प्रभाव में इलेक्ट्रॉन का उत्सर्जन धातु की सतह से अर्थात ठोस और गैस की सीमा रेखा से होता है. इस घटना का अविष्कार सन् १८८७ में हर्टज़ Herts ने किया था. उन्होने पाया कि धातु-पत्र को विभिन्न वरणों के प्रकाश से प्रकाशित करने पर इलेक्ट्रॉन के वेग में भी भिन्नता पायी जाती है किन्तु वे इसको विद्युत-चुम्बकीय सिद्धांत से समझा न सके. सन १९०५ में एल्बर्ट आइन्सटाइन ने इस प्रकार का स्पष्टीकरण किया. चित्र १, में इस प्रभाव का अध्ययन करने के लिए, प्रयोग के आयोजन को दिखाया गया है.

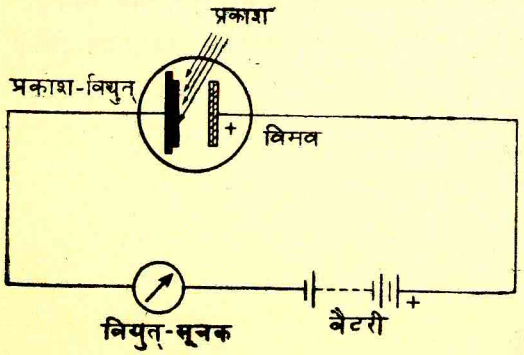

वह उपकरण, जिसके द्वारा प्रकाश - ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में परिणित की जाती है, प्रकाश-सेल कहलाता है. प्रकाश-विद्युत प्रभाव को गणित के सहारे निम्न विधि से प्रदर्शित किया जा सकता है.

$$h\nu = \frac{1}{2} mv^2 + \omega \text{..........} (१)$$

इस समीकरण में h प्लांक-स्थिरांक है और ν प्रकाश की आवृत्ति बताता है. m इलेक्ट्रान की मात्रा है, और सतह छोडने के बाद, इलेक्ट्रान का वेग v है. ω को कार्य फलन कहा जाता है, अर्थात् यह, इलेक्ट्रॉन को उसके परमाणु से छुडा कर वस्तु की सतह पर लाने के लिए किये गये काम का मान है.

इस प्रक्रम को समझाने के लिए हमें प्लांक की परिकल्पना का आधार लेना होगा. इसके अनुसार ऊर्जा का अवशोषण या उत्सर्जन सतत न होकर अत्यन्त छोटे-छोटे भागों मे विभक्त होकर होता है. प्रकाश-ऊर्जा के इन छोटे-छोटे भागों को 'फोटॉन' कहते हैं. विभिन्न वर्णों के लिए इसका मान भी भिन्न होता है. किसी फोटॉन की ऊर्जा E जिसकी आवृत्ति ν हो, निम्न समीकरण से दिखायी जा सकती है :–

$$E = h\nu \text{....................} (२)$$

समीकरण (१) से हमें पता लगता है कि फोटॉन की ऊर्जा दो भागों में बंट जाती है अर्थात् इलेक्ट्रान को उसके परमाणु से छुडाने व उसे सतह पर लाने में और इलेक्ट्रान को सतह छोड़ने के बाद गतिज-ऊर्जा देने में. यदि ऐसी आवृत्ति का प्रकाश प्रयुक्त किया जाय कि फोटॉन की ऊर्जा केवल कार्यफलन के बराबर हो तो समीकरण (१) का रुप निम्न प्रकार हो जाता है–

$$h\nu = E = \frac{1}{2}mv^2 + \omega = \frac{1}{2}mv^2 + h\nu_0$$

अथवा

$$Em = \frac{1}{2} mv^2 = h(\nu - \nu_0) \quad (३)$$

जहां $\omega = h\nu_0$ है.

ν_0 आवृत्ति को आवृति की देहली कहते हैं समी-

करण (३) को आइन्सटाइन का प्रकाश-विद्युत समीकरण कहते हैं. E_m प्रकाश-इलेक्ट्रॉनकी अधिकतम ऊर्जा को प्रदर्शित करता है. चित्र २ में, E_m और ν का ग्राफ दिखाया गया है.

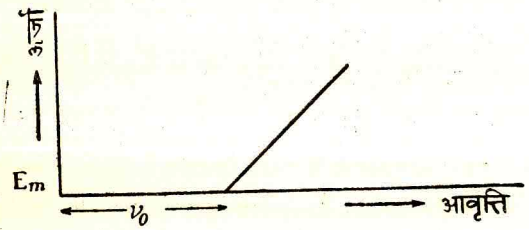

इस प्रयोग के परिणाम निम्न हैं :–

(अ) प्रत्येक धातु के लिए आवृत्ति का एक निम्नतम मान होता है. इससे नीचे की आवृत्ति का प्रकाश का उपयोग करने पर इलेक्ट्रॉन धातु के बाहर नहीं निकलते.

(ब) प्रकाश-इलेक्ट्रॉन का वेग आपतित किरण-पुंज की तीव्रता से अप्रभावित रहता है. यह केवल आवृत्ति के साथ बदलता है.

(ग) धातु की सतह से उत्सर्जित इलेक्ट्रॉनों की संख्या आपतित प्रकाश की तीव्रता की समानुपाती होती है.

२ – प्रकाश चालकता :–

प्रकाश की प्रतिक्रिया के कारण, वस्तु के भीतर मुक्त हुए इलेक्ट्रॉनों के कारण, उस वस्तु की विद्युतीय चालकता बढ़ जाती है. इस प्रक्रम का सर्वप्रथम प्रेक्षण डब्ल्यू-स्मिथ, ने सैलिनियम के प्रकाश-सेल में किया था. उस समय केवल तीन वस्तुएं ज्ञात थीं जिनमें यह प्रक्रम हो सकता है किन्तु हमें इस समय इस प्रकार की बहुत सी वस्तुएं ज्ञात हैं.

३ – प्रकाश वोल्टीय प्रभाव :–

सन १८८६ में इस प्रक्रम का आविष्कार एल्स्टर और गीटेल ने किया था. यदि किसी परिपथ (सर्किट) में ऐसी वस्तु रख दी जाये जिस पर प्रकाश डालने पर इलेक्ट्रॉन निकलते हों तो बिना बैटरी की सहायता से ही विद्युत वाहक बल उत्पन्न किया जा सकता है. पारद द्वारा रगड़ी गयी जिंक की प्लेट को यदि कुचालक के बीच रख दिया जाये और प्रकाश किरणें डाली जायें तो प्लेट पर २·५ वोल्ट का विभवान्तर उत्पन्न हो जाता है.

ऊपर वर्णित तीन प्रभावों का उपयोग भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किया जाता है.

१. प्रकाश सेल का प्रयोग (जिसे प्रकाश-विद्युत आंख कहा जाता है) टेलीविजन, बात करते हुए चित्रों, एक्सपोज़र मीटर, स्वचालित दरवाजा, आदि में किया जाता है

२. प्रकाश चालकता प्रक्रम के आधार पर प्रकाश-चालक बनाया जाता है. प्रकाश-चालक का प्रयोग धारा के मान को बदलने में किया जाता है. इसके द्वारा निर्मित तापमापक तापक्रम नापने तथा तापक्रम के नियंत्रण करने में काम आते हैं. प्रकाश बैरिस्टर के द्वारा अधिक दूरी पर स्थित गर्म पिण्डों का पता लगाया जाता है. अर्द्ध-चालकों द्वारा बनाये गये ताप-युगमों का उपयोग अधिकतर दृष्य और इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रॉस्कोपी में किया जाता है

३. मणिभ-गणक में भी इनका प्रयोग होता है.

४. अधिकांश उत्प्रेरक भी अर्द्ध-चालक होते है. ये रासायनिक-क्रियाओं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं.

५. परिशोधक रेक्टीफार्क्स भी अर्द्ध-चालक होते हैं.

आपका ज्ञान ... ... और वैज्ञानिक शब्दावली

नीचे अंग्रेजी के विज्ञान पारिभाषिक शब्द दिये गये हैं. उन के सामने हिंदी शब्दार्थ हैं.किंतु जैसा कि आपको अनुभव हो रहा है, ये शब्दार्थ असंगत हैं. आपको शब्दों का साथ निश्चित करना है - यानी आपको छोड़े गये स्थानों पर संगत अंग्रेजी शब्द की क्रम संख्या रखनी है. आपकी सुविधा के लिए पहले शब्द की सही क्रमसंख्या भर दी गयी है, उत्तर के लिए पृष्ठ उलटा करके देखिए.

1. Differentiation	विक्षेपण	7 .
2. Diffraction	विसरण	—.
3. Diffusion	वियोजन	----.
4. Discharge	विघटन	----.
5. Discrete	आसवन	----.
6. Disintegration	असतत	----.
7. Dispersion	अवकलन	----.
8. Dissociation	विसर्जन	----.
9. Distillation	अपरसण	----.
10. Divergence	विवर्तन	------.

पुस्तक समीक्षा

वैज्ञानिक उद्भावों का इतिहास
लेखक - जगपति चतुर्वेदी प्रकाशक-हिंदी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ
मूल्य ५-५० रु.

इस पुस्तक में विविध वैज्ञानिक उदभावों का इतिहास बड़ी सरल और रोचक भाषा में लिखा गया है. इस में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न उदभावों के पीछे क्या क्या भावनाएं और तत्व कार्य करते रहे हैं और लेखक इस कार्य में काफी सफल रहा है.

लेखक ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार किसी एक मनुष्य की उपलब्धि नहीं परंतु बहुत से वैज्ञानिकों के सतत असफल तथा सफल प्रयत्नों का परिणाम है.

इस पुस्तक में छापाखाने से लेकर परमाणु युग के प्रादुर्भाव तक की सभी महत्वपूर्ण खोजों के बारे में काफी रोचक जानकारी दी गयी है.

बृ. पा.

आपका ज्ञान — सही उत्तर

7, 3, 8, 6, 9, 5, 1, 4, 10, 2.

इंजीनियरी डिजाइन और उसका भविष्य

ए. पी. आनंद., रिमोट हेंडलिंग उपकरण अनुभाग, भा. प. अ. केंद्र, बंबई.

किसी भी तकनीकी व्यक्ति के लिए 'डिजाइन' शब्द विशेष अर्थ वाला होता है. साधारण तौर पर 'डिजाइन' शब्द के अर्थ से किसी वस्तु के निर्माण से पूर्व की आकृति के स्वरुप का अर्थ लगाया जाता है. किंतु एक तकनीकी आदमी 'डिजाईनिंग' अथवा 'आकल्पन' शब्दों को विशेष अर्थों में प्रयुक्त करता है. आकल्पन वस्तुतः एक सृजनात्मक कार्य है. यह एक नैसर्गिक देन है जिसे सीख कर नहीं पाया जा सकता. कला, विज्ञान अथवा इंजीनियरी किसी भी क्षेत्र का आकल्पन कर्ता क्यों न हो, जब तक आंतरिक भावनाओं का उद्वेलन अपनी चरण सीमा तक नहीं होता वह एक अच्छी डिजाइन बनाने के अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल नहीं हो सकता. वस्तु विशेष का अंतिम रुप ही आकल्पन की कसौटी है तथा वस्तु ऐसी हो जो अधिक मनुष्यों को सुंदर प्रतीत हो इसलिए आकल्पन-कर्ता के लिए जनअभिरुचि का जानना भी आवश्यक हो जाता हैं. किंतु इंजीनियरी डिजाइन के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है. आकल्पन की समस्याओं के संबंध में एक इंजीनियरी आकल्पन-कर्ता विभिन्न दृष्टिकोणों से सोचता है. कुछ आकल्पन-कर्ता केवल पुस्तकों में प्रकाशित सामग्री या रुढ़िगत विधियों के आधार पर वस्तु का डिजाइन तैयार करते हैं लेकिन अन्य आकल्पन-कर्ता अपनी कल्पना एवं अंवेषण शक्ति के बल पर नयी विधियों को जन्म देते हैं. यही सच्चे आकल्पन-कर्ता होते हैं. ऐसे ही व्यक्ति अपने आपको एक सफल आकल्पन-कर्ता के रुप में सामने ला सकते हैं.

प्रायः यह देखा जाता है कि जीवकोपार्जन के लिए आकल्पन का सहारा लेने में आदमी डरते हैं. ये वे लोग होते हैं जिन्होंने किसी और लाइन में जगह न पाने पर आकल्पन को चुन लिया होता है. हमारे देश की शिक्षा प्रणाली कुछ ऐसी है कि अपनी रुचि का विषय प्रारंभ से नहीं चुना जा सकता. बाद में भी व्यक्ति ऐसे व्यवसाय को चुनता है जिसमें उसकी न्यूनतम रुचि होती है. आज के इस प्रगति युग में जो व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा प्राप्त नहीं करेंगे वे पिछड़ जायेंगे. दूसरे शब्दों में योग्य व्यक्ति ही विशेष शिक्षा के अधिकारी होने चाहिए.

राज्य सरकारों का यह कर्तव्य है कि वे वर्तमान परिस्थितियों में नयी पीढ़ी का मार्ग सही तरीके से निर्देशित करें. अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन देकर ही यह संभव होगा. अधिक अनुसंधान होने पर हम लोग विदेशी सहकार्यता पर भी निर्भर नहीं रहेंगे इससे विदेशी मुद्रा की तो बचत होगी ही साथ ही लोगों को व्यवसाय भी मिलेगा.

हमारे देश में शिक्षा के क्षेत्र में आकल्पन पर पूरा ध्यान नहीं दिया जाता. निजी और सार्वजनिक उद्योगों को अपना कुछ धन आकल्पन और शोध कार्यों पर व्यय करना चाहिए.

इंजीनियरी की उच्च शिक्षा में इंजीनियरी डिजाइन के विषय का समावेश अवश्य होना चाहिए. यथापि आकल्पन के बारे में ऊपर काफी बातें बतायी जा चुकी हैं जो कि तकनीकी नहीं हैं लेकिन फिर भी इन्हे नजरअंदाज नही किया जा सकता. क्योंकि ये बहुत ही महत्वपूर्ण बातें हैं.

आकल्पन–कर्ता कैसा हो ?

एक अच्छा आकल्पन–कर्ता वह है जो इंजीनियरी डिजाइन के अपने ज्ञान के आधार पर वस्तुओं को अच्छे से अच्छा बनाने का प्रयास करता है. साथ ही उसे कई और बातों का ध्यान रखना पड़ता है. जैसे निर्मित वस्तु के संचालन में किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित नहीं होनी चाहिए. बारबार गति में आने वाले हिस्सों को तेल आदि देने की जगह के लिए उचित व्यवस्था करनी

है, साथ ही घिसने वाले हिस्सों के लिए उपयुक्त (धातु) का उपयोग करना होता है. जिन हिस्सों लगने का भय हो उनके ऊपर रंग करना चाहिए प्रकार के संक्षारण, ताप और दबाव के प्रभाव में वाली वस्तुओं के लिए उपयुक्त धातुओं का प्रयोग यक हो जाता है. साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि प्रयुक्त की गयी धातु स्तेमाल करने पर टूटे-फूटे या घिसे न. इन सबके अलावा, इंजीनि- आकल्पन-कर्ता को वस्तु को इस्तेमाल करने वाले तयों की सुरक्षा का भी ध्यान रखना होता है.

ह अतिआवश्यक है कि आकल्पन-कर्ता एक अच्छा ज्ञ भी हो और वह रोजमर्रा की समस्याओं को करने में निपुण हो तथा शीघ्र निर्णय कर सकने हो और उसे भौतिकी, यांत्रिकी, धातुकर्म-विज्ञान, की शक्ति व गुण तथा वर्कशाप तकनीकों के बारे न हो.

इत्तफाक

रिसर्च एक इत्तफाक है।
वक्त की ईजाद है।
न छपे तो खाक है।
ढेरों पैसा बरबाद है॥

मेघराज सचदेव

षपूर्ण आकल्पवाली वस्तु की अपेक्षा सही आकल्प- कोई भी वस्तु अधिक टिकाऊ रहती है. दोषपूर्ण के दोषों का पता उसके प्रयोग करने के बाद ही पाता है. ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो काम को ने के नाते जल्दी जल्दी में दोषपूर्ण चीजें बना कर ते हैं. ऐसी स्थितियों में बहुधा देखा यह गया है कि ल्पन-कर्ता पूरी तरह से डिजाइन की आवश्यकता नहीं समझ सका था.

कुछ लोगों को गलत धारणा रहती है कि इंजीनियरी ल्पन-कर्ता इंजीनियरी की प्रत्येक शाखा के बारे में ता है. आजकल इंजीनियरी की प्रत्येक शाखा का तार हो चुका है. इसलिए विशेष आकल्प के कार्य को न करने के लिए किसी दल को कार्य सौंपना चाहिए. में प्रत्येक शाखा से संबंधित व्यक्ति रखे जा सकते हैं.

यह बड़ी-बड़ी अनुसंधान प्रयोगशालाओं में ही संभव है. आकल्पन-कर्ताओं को काफी मात्रा में प्रतिरुप आदि बनाने के लिए आवश्यक धातु उपलब्ध होनी चाहिए.

आकल्पन-कर्ता को स्वदेशी और मान्य वस्तुओं के बारे में पता होना चाहिए जिससे वह वर्कशाप तकनीकों और उत्पादनों को सस्ता बना सकने में मदद कर सके. साथ ही आकल्पन-कर्ता को विश्व में हो रहे विकास के संबंध में भी पता होना चाहिए.

हमारे जैसे विकासशील देशों में, जनसाधारण का आर्थिक स्तर ऊंचा उठाने में तथा उपभोक्ताओं को सस्ती, टिकाऊ व आधुनिक वस्तुएं प्रदान करने में इंजीनियरी आकल्पन-कर्ता का अपना महत्वपूर्ण स्थान है. भारत ने, साइकिल, रेडियो, सिलाई मशीन, फर्नीचर जैसी प्रावैधिक चीजों का विदेशों में निर्यात करना प्रारंभ कर दिया है. इन वस्तुओं की वहां काफी मांग है. इससे हमें विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है. इस सबका श्रेय आकल्पन-कर्ता को ही नहीं जाता बल्कि उन लोगों को भी जाता है जिन्होंने वस्तु की संविरचना में भाग लिया था. जब एक वस्तु अपना बाजार बना लेती है तथा जिसकी मांग उत्पादन से अधिक होती है तब आकल्पन-कर्ता एवं उसका मालिक और वे सभी कर्मचारी जिन्होंने उस वस्तु को बनाने में सहायता दी थी, अपने पर गर्व कर सकते हैं. इसके परिणाम में आकल्पन-कर्ता की पदोन्नति भी हो सकती है.

यदि आकल्पन-कर्ता में लगन है तो वह सदैव ड्राइंग बोर्ड पर झुका हुआ कार्य करता रहता है. लेकिन हमारे यहां भारत में आकल्पन-कर्ता ड्राइंग बोर्ड पर काम करने से जी चुराते हैं. किंतु उन्हें समझना चाहिए कि इस प्रकार वे अपने कार्य के प्रति उचित न्याय नहीं करते. ऐसा करते रहने पर उन्हें बाद में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा. वस्तु का अच्छा होना विश्वसनीयता, आर्थिक मूल्य और टिकाऊपन पर निर्भर करता है. ऐसी वस्तु के उत्पादन के लिए उचित एवं प्रमाणित पदार्थों का उपयोग करना चाहिए. साथ ही ऐसे पुर्जे काम में लाने चाहिए जिनको बदलने में आसानी रहे. उत्पादन का अंतिम रुप ऐसा हो जिसके संचालन में कम से कम कठिनाई हो अन्यथा उसके दाम बढ़ जायेंगे.

आजकल ढलाई का स्थान संविरचना (फेब्रीकेशन) ने ले लिया है. यह ध्यान में रखना चाहिए की वेल्डिंग से काम आसान हो जाता है लेकिन यदि तापकुट्टन (फारजिंग) की सुविधाएं प्राप्त हों तो उनका ही प्रयोग करना चाहिए क्योंकि धातुओं को मोड़ना वेल्डिंग की अपेक्षा सस्ता पड़ता है. वस्तु के विभिन्न अंगों की डिजाइन बनाते समय इस बात का ध्यान भी रखना चाहिए कि इनका आसानी से काफी बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो के.

इंजीनियरी डिजाइन एक ऐसा विषय नहीं है जो थोड़े समय में ही पूरी तरह समझा जा सके. इसका सीखना-समझना आदमी की आंतरिक इच्छा पर निर्भर करता है. आकल्पन-कर्ता का अनुभव उसके द्वारा बनायी गयी मौलिक डिजाइनों पर निर्भर करता है. अधिकांश आकल्पन-कर्ता अपने पास एक फाइल रखते हैं जिनमें उनके द्वारा बनायी हुई डिजाइनें जमा रहती हैं.

आजकल का आकल्पन-कर्ता उन लोगों की तरह नहीं है जो अपनी आकल्पन संबंधी समस्याओं को सुलझाने के लिए बहुत ही अविकसित तरीके काम में लाते थे. वर्तमान प्रगतियुग में इतनी स्पर्धा आ जाने के कारण आज के आकल्पन-कर्ता को बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है ताकि वह पिछड़ न जाये.

यदि हमारी सरकार और औद्योगिक अधिष्ठान आदि स्वदेशी वस्तुओं का स्तर ऊंचा उठाना चाहते हैं तो उन्हें अपने इंजीनियरी कर्मचारियों और खासकर के इंजीनियरी आकल्पन-कर्ताओं की उन्नति एवं उनको प्राप्त हो सकने वाले लाभों के संबंध में गंभीरता से सोचना होगा. उद्योग के उच्च अधिकारियों को इस प्रकार की नीति अपनानी चाहिए जिससे कर्मचारी कार्य में रुचि बनाये रखें और साथ ही अपने तकनीकी ज्ञान को भी बढ़ा सकें. इस कार्य के लिए काफी मात्रा में धन की आवश्यकता पड़ेगी जिसे कोई अकेला आदमी खर्च नहीं कर सकता. अनुसंधान कार्य के लिए धन के साथ ही धैर्य की भी आवश्यकता होती है. आकल्पन-कर्ताओं को पूर्व प्रमाणित परिणाम उपलब्ध होने चाहिए जिससे विगत की तरह समय नष्ट न हो और नित्य की समस्याएं कम समय में सुलझ सकें, नहीं तो बहुत सा समय यूं ही निरर्थक प्रयासों में चला जा है. इसके लिए सूक्ष्मचित्रण (माइक्रोफिल्मिंग) शुष्क चित्रण (जिरॉक्सिंग) उपकरणों की सहा लेना वांछनीय है.

वास्तविकता तो यह है कि बहुत से उद्योगपतिओं नाम मात्र भी तकनीकी ज्ञान नहीं होता. उन्हें के इस बात की चिंता रहती है कि कैसे भी जल्दी से ज सामान बन जाना चाहिए. ऐसे व्यक्ति भविष्य योजनाओं के बारे में अधिक नहीं सोचते. उन्हें ल ह कि वस्तु का उत्पादन प्रारंभ हो जाने के बाद अ ल्पन कर्ता का काम समाप्त हो गया. कभी-कभी के आकार प्रकार में हेर-फेर करने की आवश्यकता ह है जिससे कच्चे माल की बचत की जा सके या वर्क के काम के घंटों में कमी की जा सके. कभी-कभी वस्तु का पूरा का पूरा आकल्प बदल देना पड़ता है.

औद्योगिक संस्थापकों को अपने आकल्पन-कर्त की संगोष्ठियां, सेमिनार आदि आयोजित करनी चा त क वे आपस में मिल-जुलकर विचारों का आ प्रदान कर सकें. इससे उन्हें अपने कार्य के बारे में नये विचार प्राप्त हो सकेंगे तथा अपने व्यवसाय व्यक्तियों के साथ उनका सम्पर्क भी बना रहेगा. इस प्र न केवल मालिकों को अधिक लाभ होगा बल्कि कर्मच यों को भी अधिक बोनस आदि मिल सकेगा साथ ही प्रगति पथ पर अग्रसर होगा.

हमारे देश के इंजीनियर और अभिकल्पन-कर्ता दू देशों के ऐसे ही व्यक्तियों से किसी भी माने में पि हुए नहीं हैं. उनकी प्रतिभा उत्साहवर्धन के अभाव दब गयी है. यह देखा गया है कि आकल्पन-कर्ताओं तीन चौडाई समय उचित जानकारी इकट्ठा करने बीत जाता है. यदि आकल्पन-कर्ताओं को उनके काम संबंधित चार्ट, सारणियां और तकनीकी पुस्तकें उपल करा दी जायें तो इस बेकार जाने वाले समय में क कटौती की जा सकती है. उनको दूसरे औद्योगिक संस आदि देखने का भी अवसर दिया जाना चाहिए त इंजीनियरी की अन्याय शाखाओं के विषय में जानक प्राप्त हो सके. नवयुवकों के लिए प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना की जानी चाहिए जिससे आनेवाली पीढी

भी औद्योगिक संस्थानों की समृद्धि का लाभ मिल सके. आकल्पन की जटिल तथा उलझी हुई समस्याओं को आसानी से हल करने के लिए संगणकों (कम्प्यूटरों) की सुविधा का होना भी अनिवार्य है.

परम आवश्यकता है कि भारत में भी पश्चिमी देशों की तरह ही आकल्पन संस्थाओं की स्थापना की जाये. यह सही है कि हमारे देश में इस क्षेत्र की कुछ संस्थाएं हैं लेकिन उनमें इंजीनियरी आकल्पन पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता. बड़ी संख्या में आकल्पन संस्थाएं और अनुसंधान केंद्र स्थापित होने चाहिए जहां पर नवयुवक इंजीनियरों, वैज्ञानिकों और आकल्पन-कर्ताओं को विशेष प्रशिक्षण मिलना चाहिये.

इंवेंशन प्रोमोशन बोर्ड, देहली जिसने विदेश से आयात की जाने वाली मशीनों से संबंधित खोज के लिए पुरस्कार प्रदान करने की प्रशंसनीय स्कीम प्रारंभ की, का उल्लेख करना अनुचित न होगा. इस प्रकार की उल्लेखनीय योजनाओं का और अधिक विस्तार किया जाना चाहिए ताकि बुद्धिमान व्यक्तियों को इससे लाभ हो.

● ● ●

भारतीय वैज्ञानिक

मेरी टूटी खाट
उस पर बिछा टाट
बैठ कर रिसर्च करता हूं मैं.

भव्य भवन
जैसे राजमहल
बड़े - बड़े प्रासाद
पर फिर भी झोपड़ी में रहता हूं मैं.

सुहाना मौसम
चांद !
जगमगाते तारे
जहां रॉकेट जाते
पैदल चला करता हूं मैं.

मन चाहे समय
फुर्सत से –
बॉस लिखा करते पेपर
थोड़ा सा काम सिर्फ करता हूं मैं.

मन का कोना है
अंधकार का कुआं
खाली वक्त में,
कभी-कभी कविता लिखा करता हूं मैं.

–० मेघराज सचदेव

● ● ●

नये फोटो मीटर का आविष्कार

काशी हिंदू विश्वविद्यालय के विज्ञान संकाय के बी. एस. सी. खंड दो के छात्र श्री निरंकारसिंह ने एक नये फोटो मीटर का आविष्कार किया है. फोटो मीटर प्रकाश स्रोत की प्रदीपन शक्ति के मापन का यंत्र होता है. श्री निरंकार सिंह ने फोटो मीटर के इसी सिद्धांत पर एक नये फोटो मीटर का आविष्कार किया है जो दो-ढाई सौ रुपयों में बनाया जा सकता है तथा इंटरमीजिएट और बी एस. सी. कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए छोटी बडी शिक्षण संस्थाओं में सुलभ हो सकता है. इन दिनों श्री. सिंह विज्ञान संकाय के वर्कशाप में एक फोटो पेण्डुलम बना रहे हैं. इस पेण्डुलम से पृथ्वी का घूर्णन ज्ञात किया जा सकता है.

धागों में उलझा हमारा जीवन

डा. अनिल सद्गोपाल, अण्विक जैविकी अनुभाग, टाटा संस्थान बम्बई.

आम के बीज से सदा आम का और मुर्गी के अंडो से सदा चूजों का ही जन्म होता है. यह कौन नहीं जानता कि प्रत्येक प्राणी सदा अपने ही जैसे प्राणी को जन्म देता है. प्रकृति की इस आधारभूत प्रणाली का रहस्य कोशों में पाये जाने वाले सूत्राकार क्रोमोसोमों में छिपा है. गर्भाधान क्रिया के दौरान इन क्रोमोसोमों के द्वारा ही किसी भी वंश या जाति के लक्षण एक पीढी से अगली पीढी को संक्रमित होते हैं.

पिछली कुछ दशाब्दियों में जीवशास्त्रियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि शारीरिक लक्षणों (अंगो का आकार, त्वचा की रचना व रंग, कद, आदि) को निर्धारित करने वाली आनुवंशिक (जनेटिक) इकाइयां 'जीन' इन्हीं क्रोमोसोमों पर विद्यमान होती हैं. क्रोमोसोम का सूत्र वास्तव में इन जीनों को एक के बाद एक लम्बी कतार में लगा देने से बनता है. प्रत्येक क्रोमोसोम पर हजारों जीन तक पाये जा सकते हैं. और प्रत्येक जीन में किसी एक लक्षण विशेष को निर्धारित करने की आवश्यक सूचना रासायनिक भाषा में संचित होती है.

क्रोमोसोमों की रासायनिक संरचना के बारे मे पिछले बीस वर्षों में विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो गया है. प्रत्येक क्रोमोसोम में डीऑक्सीराइबोज न्यूक्लियक एसिड (डी. न्यू. ए) नामक चक्करदार सीढीनुमा सूत्र (व्यास = २० $\mathring{A}$) पाया जाता है. जीन और कुछ नहीं बल्कि डी. न्यू. ए. ही है. इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) की सहायता से व जीवरासायनिक विधियों द्वारा एकत्रित सूचना के बल पर स्पष्ट हो गया है कि सूक्ष्मजीवी (बैक्टीरिया) और जीवाणु (वायरस) जैसे सरल प्राणियों का क्रोमोसोम केवल डी. न्यू. ए. का सूत्रमात्र है. इसलिए सरल प्राणियों के २० $\mathring{A}$ व्यास वाले क्रोमोसोमों को साधारण प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखना संभव नहीं है. ये क्रोमोसोम इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखे जा सकते है. परन्तु पौधे, जानवर व मनुष्य जैसे बहुकोशीय और जटिल प्राणियों में डी. न्यू. ए. के साथ साथ कई भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रोटीनें (और कुछ अन्य पदार्थ) संलग्न होती हैं. इस कारण क्रोमोसोम का व्यास २० $\mathring{A}$ से बढ़कर लगभग २०० $\mathring{A}$ तक हो जाता है. इस अवस्था में भी ये क्रोमोसोम अत्यंत महीन सूत्र समान ही होते हैं और न्यूक्लियस (केंद्रक) के अंदर परस्पर गुंथे पड़े रहते हैं. साधारण प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा केंद्रक का निरीक्षण करने पर केवल एक धूमिल जाल ही नजर आता है जिसमें व्यक्तिगत क्रोमोसोमों को पहचान पाना असंभव है.

अच्छा, तो यह जाल-सदृश स्थिति क्रोमोसोमों की उन कोशों में हुई जो विश्रामवस्था में होते हैं (अर्थात जो विभाजन क्रिया में भाग नहीं ले रहे होते). परन्तु जैसे ही कोशों का विभाजन शुरु होता है, क्रोमोसोमों का यह अस्पष्ट जाल सिमट जाता है. फिर छोटे छोटे नियमित आकार के गुच्छे बन जाते हैं– इन्हीं गुच्छों को सर्वप्रथम १६ वी शताब्दी के अंत में युरोपीय वैज्ञानिकों ने क्रोमोसोम के नाम से पुकारा था. सिमट जाने के कारण २०० $\mathring{A}$ वाले महीन क्रोमोसोमों का व्यास बढ़कर कुछ माइक्रोन (एक माइक्रोन सेंटी मीटर के दस हजारवें भाग के बराबर होता है) हो जाता है और लम्बाई कई गुना कम हो जाती है. अब इन निश्चित शकलों वाले क्रोमोसोमों को आसानी से प्रकाश सूक्ष्मदर्शी द्वारा पहचानना व देखना संभव है.

मानवीय कोशों की विभाजनशील अवस्था में दिखाई देने वाले ४६ क्रोमोसोमों का चित्र मुखपृष्ठ पर दिखाया गया है. मजे की बात तो यह है कि सुप्रसिद्ध व सुंदर आकार वाले क्रोमोसोम, जिनके बारे मे हम सदा सुनते आये हैं, वास्तव में केवल कोश-विभाजन के दौरान पाये जाते हैं. विभाजन के पश्चात् ये क्रोमोसोम फिर खुल कर महीन सूत्राकार बन जायेगें और उनका यह प्रभावशाली व्यक्तित्व केंद्रक के धुंधलेपन में खो जायेगा.

जिज्ञासाएं ?

क्या प्रकाश में भार होता है ?

प्रकाश की प्रकृति क्या है ? यह अभी भी पूरी तरह ज्ञात नहीं हैं. भौतिकीविदों के लिए आज भी यह एक समस्या बनी हुई है क्या प्रकाश में भार होता है ? क्या यह कोई पदार्थ है जो गतिमान रहता है ? अलबर्ट आईंस्टाइन द्वारा किये गये अनुसंधान कार्य से प्रकाश की रहस्यमय प्रकृति को जानने में कुछ सहायता अवश्य मिली. आईंस्टाइन नें कहा था कि 'प्रकाश विकिरण है. बिकिरण ऊर्जा का एक रुप है, ऊर्जा में संहति होती है, और संहति पर गुरुत्वाकर्षण बल का प्रभाव पड़ता है. फलस्वरुप, ब्रह्मांड में से गुजरता हुआ प्रकाश विभिन्न आकाशीय पिण्डों द्वारा आकृष्ट किया जाना चाहिए दूसरे शब्दों में, हम कह सकते है कि, यदि प्रकाश में संहति है, तो किसी आकाशीय पिण्ड के समीप आने पर इसे अपने पथ से झुक जाना चाहिए.

आईंस्टाइन ने इसके लिए एक प्रयोग करने का प्रस्ताव रखा जिससे उसकी परिकल्पना सिद्ध हो सके. सन १९१९ में एक सूर्य ग्रहण पड़ने वाला था. सूर्य ग्रहण में चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है आईंस्टाइन ने बताया कि इस अवस्था में आकाश में अंधकार छा जायेगा और सूर्य के समीप वाले तारे स्पष्ट दिखायी देने लगेंगे. यदि उसके द्वारा दी गयी परिकल्पना सही है तो ये तारे अपनी सामान्य स्थिति में नहीं होंगे, बल्कि सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण अपनी सामान्य स्थिति से विचिलत हो जायेंगे.

लंदन की रायल सोंसायटी ने आईस्टाइन के प्रस्ताव पर उक्त प्रयोग को कार्यान्वित करने के लिए ब्राझील और न्यू-गिनी में वैज्ञानिकों की टोलियां भेजी. इन दोनों स्थान पर पूर्ण सूर्य-ग्रहण होना था. सूर्य-ग्रहण के चित्र लिये गये. इन चित्रों से सूर्य के समीपवर्ती तारों की स्थिति का स्पष्ट पता लगता था. छः महीने पश्चात जब घूमती हुई पृथ्वी अपनी कक्षा के दूसरे छोर पर पहुंची तो इन्हीं तारों के चित्र रात्रि में एक बार फिर से लिये गये. दोनों चित्रों की तुलना की गयी तो पता चला कि तारों की स्थिति में विचलन था. लेकिन यह विचलन वैसा नहीं था जैसा कि आईंस्टाइन की परिकल्पना के अनुसार होना चाहिए था. इस पर आईंस्टाइन ने कहा कि यदि अच्छे चित्र लिये जायें तो तारे सही स्थिति में होंगे. आईंस्टाइन का अनुमान वास्तव में सही था. उनके प्रयत्नों के बाद १९५२ में खगोल शास्त्रियों ने अत्यंत सावधानी व शुद्धता के साथ इसी प्रयोग को एक बार फिर से दुहराया तो उन्होंने तारों को सही स्थिति में पाया. इस प्रयोग से यह परिणाम निकला कि प्रकाश में संहति होती है और इसलिए भार भी होता है.

आइसोटोप क्या है ?

उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक जिन तत्वों की खोज हुई उनमें कोई क्रमवता नजर नहीं आती थी. सर्वप्रथम सन १८८९ में रुसी वैज्ञानिक दमित्रि मेंडेलीफ ने तत्वों को उनके परमाणुभार के अनुसार क्रमबद्ध करके एक सारणी तैयार की मेंडेलीफ ने यह दर्शाया कि एक नियमित अन्तराल (पीरियड) से तत्वों के गुणों की पुनरावृत्ति होती है. इसीलिए उसने उस सारणी का नाम पीरियोडिक टेबल (आवर्त सारणी) रखा. अपनी आवर्त सारणी के आधार पर मेंडेलीफ ने उस समय तक अज्ञात तत्वों के गुणों की भविष्यवाणी की. उसकी भविष्यवाणी उसके जीवनकाल में ही सत्य सिद्ध भी हुई.

तीस वर्ष तक आवर्त सारणी की बहुविध परीक्षा की गई. १८९६ में यूरोनियम से विचित्र प्रकार के विकिरण निकलते हुए पास गये. विकिरण-उत्सर्जन की क्रिया में यूरेनियम विघटित होकर दूसरे पदार्थ में बदल गया. यह दूसरा पदार्थ भी विघटित होकर बदल गया और यही क्रिया चलती रहती रही. थोरियम तत्व ने भी

इन्हीं गुणों का प्रदर्शन किया.

रसायनज्ञों ने ४० से भी अधिक विघटन उत्पादों का पता लगाया. सबके अपने-अपने गुण अलग थे. लेकिन इन नये तत्वों के लिए आवर्त सारणी में उपयुक्त स्थान नहीं था. उदाहरणार्थ इनमें से एक तत्व था 'रेडियम-जी' रासायनिक रुप में वह सीसे (लेड) की तरह व्यवहार करता था, परन्तु इससे विकिरण का भी उत्सर्जन होता था जबकि साधारण सीसा विकिरण उत्सर्जित नहीं करता. आवर्त सारणी में वह कहीं भी ठीक नहीं बैठता था. इन्हीं विघटनों के उत्पाद स्वरुप तीन गैसों का भी पता लगा परन्तु आवर्त सारणी में केवल एक ही स्थान रिक्त था.

अनेक वैज्ञानिकों ने मिल कर, विशेष रुप से ब्रिटिश रसायनज्ञ फ्रेडरिक सोडी ने, १९१३ में इस समस्या को हल किया. उन्होंने प्रस्ताव रखा कि किसी तत्व विशेष के परमाणु अनेक प्रकार के हो सकते हैं यह बात अब पूरी तरह सत्य सिद्ध हो चुकी है. किसी भी एक तत्व के सभी परमाणुओं में प्रोटॉनों की संख्या समान होती है. इसलिए उनके रासायनिक गुण भी सामान्यतया समान होते है. परन्तु उनके नाभिक में न्यूट्रानों की संख्या भिन्न हो सकती है. इसलिए वे अन्य गुणों में-यथा, वे विघटित होते हैं अथवा नहीं, तथा विघटन के ढंग आदि में भिन्नता प्रदर्शित कर सकते हैं.

किसी एक तत्व विशेष की ये विभिन्न परमाण्त्रिक किस्में आवर्त सारणी में एक ही स्थान पर रखी जाती हैं. इसी आधार पर फ्रेडरिक सोडी ने इन 'परमाण्विक किस्मों' को आईसोटोप नाम दिया, क्योंकि ग्रीक भाषा में आइसास का अर्थ होता है 'बराबर' अथवा 'वही' और टोपोस का 'स्थान' हिंदी मे इसी आधार पर इन्हे समस्थानिक नाम दिया गया है. ● ● ●

विज्ञान प्रगति से साभार

महान भारतीय वैज्ञानिक

यह परिषद् द्वारा प्रकाशित पहली पुस्तक है और भारत में परमाणु युग के प्रवर्तक वैज्ञानिक डॉ. होमी जहांगीर भाभा को समर्पित की गयी हैं. इसमें भारतीय विज्ञान के दस गणमान्य वैज्ञानिकों की जीवनियां संकलित हैं. पुस्तक मूल्य मात्र दो रुपये.

" —महान भारतीय वैज्ञानिक, नामक पुस्तक प्राप्त हुई. पुस्तक बहुत अच्छी है, अतएव बधाई देता हूं. "

—रामधारी सिंह दिनकर

" —पुस्तक बहुत रोचक है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे विद्यार्थियों के लिए अत्यंत उपयोगी होगी. इसे मै पूरी पढ़कर ग्रंथालय को दे दूंगा "

—रमेशचन्द्र कपूर

पुस्तिका में उन महान वैज्ञानिकों का चरित्रांकन किया गया है, जिन्होंने संसार के मानचित्र में भारत का नाम अंकित किया है. विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में इन वैज्ञानिक विभूतियों की सेवाओं का चित्रण जिस सरल तथा सुंदर हिंदी में किया है वह सराहनीय है. पुस्तक की साज सज्जा तथा मुद्रण उत्तम है.

—नवभारत टाइम्स, बंबई

वे जो रास्ते बना गये

बीरबल साहनी

३ अप्रैल १९४९ को पंडित जवाहरलाल नेहरु ने 'बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पालियोबाटनी' का उद्घाटन किया था. यह संस्थान आज विश्वके प्रसिद्ध संस्थानों में से एक है. संस्थान के उद्घाटन के ७ दिन बाद ही प्रोफेसर बीरबल साहनी का देहांत हो गया. प्राफेसर साहनी मानो एक देवदूत बन कर धरती पर अवतरित हुए और अपने अभियान को पूरा कर के वापस चले गये.

विज्ञान की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि देश के विद्यालयों में उसकी नींव मजबूती से रखी जाये. आधार दृढ़ होने पर ही बड़े संस्थानों एवं अन्यान्य विषयों की प्रयोगशालाओं का आविर्भाव संभव है. देश विद्यालय तथा विश्वविद्यालय समय-समय पर कुछ ऐसे व्यक्तिओं को जन्म देते रहते हैं जो आधारभूत समस्याओं को सही तरीके से समझते हैं और मौलिक अनुसंधान के महत्व को स्वीकारते हैं. प्रोफेसर बीरबल साहनी के जीवन पर दृष्टिपात करने से उपयुक्त मत की सत्यता स्पष्ट हो जाती है.

बीरबल साहनी ने अपने जीवन का बहुत बड़ा अंश विद्यालयों में दीक्षा और अनुसंधान कार्य के हेतु अर्पित कर दिया था. सन १९११ में लगभग २० वर्ष की आयु में बीरबल साहनी ने विज्ञान-स्नातक की परीक्षा उतीर्ण की. उसी वर्ष उन्हें विदेश जाने का अवसर प्राप्त हुआ. वहां आपने केंब्रिज के इमानुऊल कॉलेज से ट्राइपास की परीक्षा पास की तत्पश्चात् अलवर्ट सेवार्ड जैसे विश्व विख्यात वनस्पतिशास्त्र-वेत्ता के साथ अनुसंधान करने लगे.

केंब्रिज में साहनी ने एक्मोपाइल पंचेरी नामक पौधे के अध्ययन से बताया कि जिम्नोस्पर्म को 'स्टाकीस्पर्म और 'फाइलोस्पर्म नामक भागों में बांटा जा सकता है. इतना महत्वपूर्ण कार्य करके इस छोटी अवस्था में ही उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दे दिया था. इस विषय पर बाद में भी प्रोफेसर साहनी अनुसंधान करते रहे.

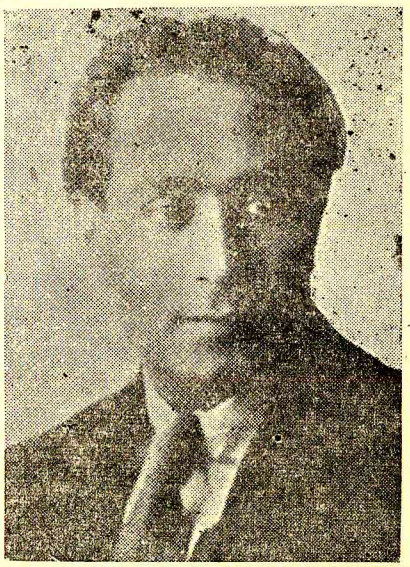

भारत लौटकर आपने बनारस और पंजाब विश्वविद्यालयों में एक एक वर्ष के लिए वनस्पतिशास्त्र के प्रोफेसर के पद पर कार्य किया. सन १९२१ में वे लखनऊ विश्वविद्यालय चले आये. वहां वे १९३३ में विज्ञान संकाय के अध्यक्ष चुने गये. प्रोफेसर साहनी के अनुरोध पर १९४३ में लखनऊ विश्वविद्यालय में भूविज्ञान विभाग खोला गया जिसके अध्यक्ष का पद भी उन्हें ही ग्रहण करना पड़ा. वनस्पति-विज्ञान की शाखा, पुरा वनस्पति विज्ञान से साहनी को विशेष लगाव था. पुरा-वनस्पति विज्ञान का कोई भी ऐसा पहलू नहीं है जिस पर प्रोफेसर साहनी ने अनुसंधान कार्य न किया हो.

बिहार प्रांत की राजमहल पहाड़ियों से लेकर मध्य प्रदेश के दक्षिणी अंतराट्रैपी संस्तरों तथा पंजाब के लवण-प्रदेशों में प्राप्त होनेवाले पुरावनस्पति के नमूनों पर आपने शोधकार्य किया आपने जिन फॉसिल पौधों का अपने शोधकार्य के अंतर्गत वर्णन किया है उनमें होमोक्सिलान राजमहलेंस, राजमहेलिया पैराडोरा और विलियमसोनिया सेवार्डियाना जैसे महत्वपूर्ण पौधे भी है. इन अनुसंधानों के फलस्वरुप पेंटाक्सिली नामक एक नये जिम्नोस्पर्म का पता चला.

जहां भी संभव हुआ बीरबल साहनी के पुरावानस्पतिक कार्य ने भूवैज्ञानिक महत्व को उजागर किया है.

दक्षिणी अंतराट्रैपी शेल समूह में प्राप्त अश्मांगों का अध्ययन करके प्रोफेसर साहनी ने ताली वनस्पति-समूह पानी में उगने वाले फर्न, कैरोफाइट और दो बीजपत्रों वाले पौधों के अस्तित्व का पता लगाया. उस समय तक इन संस्तरों को भूवैज्ञानिक खटीयुग (क्रेटेसिअस युग) का मानते थे लेकिन प्राप्त जीवाश्मों की आधुनिक पौधों से समानता के आधार पर बीरबल साहनी ने प्रतिपादित किया कि इन संस्तरों का तृतीय महाकल्प के पूर्वार्ध से अधिक प्राचीन होना संभव नहीं है. उनके बाद किये गये परीक्षणों से भी इस मत की पुष्टि होती है. इसी प्रकार, पंजाब के लवण प्रदेशों की लवणीय श्रेणी से प्राप्त सूक्ष्म-जीवाश्मों की प्रकृति के आधार पर उन्होंने बताया कि यह श्रेणी हेमंत (कैंब्रियन) युग अथवा उससे पूर्व की नहीं हो सकती जैसा कि कुछ वैज्ञानिक सोचते थे. साहनी इसे तृतीय महाकल्प का मानते थे उन्होंने वेगनर के महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धांत, हिमालय-उद्वहन, पर्मो-कार्बनी तुल्य क्षेत्र तथा हिमालय की पूर्वी भू-अभिनिति जैसे भूवैज्ञानिक और पुराभूगोलिक विषयों के संबंध में भी अनेक महत्वपूर्ण अवलोकन किये.

वनस्पति-विज्ञान के साथ-साथ वे पुरातत्व-विज्ञान में भी रुचि रखते थे, इस विषय पर उन्होंने अनेक लेख लिखे. प्राचीन भारत में सिक्के ढालने की विधियां शीर्षक का उनका लेख काफी चर्चित हुआ. इस लेख पर भारतीय मुद्रा-शास्त्र संस्था ने उन्हें नेल्सन राइट पदक प्रदान किया. अंतरराष्ट्रीय बोटेनिकल कांग्रेस भारतीय विज्ञान कांग्रेस, नेशनल अकादमी आफ सायंसेज, नेशनल इंस्टीट्यूट आफ सायंसेज तथा भारतीय वनस्पति-विज्ञान संस्था आदि में सहानी कई बार अध्यक्ष, उपाध्यक्ष तथा मंत्री बने. वे जियोलाजिकल सोसायटी आफ लंदन तथा अमरीका की अकादमी आफ आर्टस एण्ड सायंसेज के भी सदस्य थे. सन् १९३६ में वे रायल सोसायटी के भी सदस्य (एफ. आर. एस.) चुन लिये गये. यह सम्मान पानेवाले प्रोफेसर साहनी पांचवे भारतीय वैज्ञानिक थे. लंदन और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों से 'डाक्टर आफ सायंस' की उपाधियों के अतिरिक्त पटना और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों ने भी उन्हें डी. एस. सी. की उपाधि दी थी. वे वाराणासी विश्वविद्यालय में ऑनरेरी प्रोफेसर भी रहे थे. जैविकी में असाधारण अनुसंधान के हेतु आपको बंगाल की रायल एशियाटिक संस्था का बार्कले पदक प्राप्त हुआ. सन् १९४७ में आपको सर सी. आर. रेड्डी राष्ट्रीय पुरस्कार भी प्रदान किया गया.

प्रस्तुत कर्ता
वीरेंद्र कुमार गुप्ता

श्रेष्ठ विज्ञान लेखक

प्रत्येक वर्ष हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद, वर्ष के श्रेष्ठतम हिंदी-विज्ञान लेखक की घोषणा करेगी. पाठकों से अनुरोध है कि वे इस संबंध में प्रमाणिक जानकारी प्रेषित करें. यह घोषणा नव-वर्षांक में प्रकाशित की जाएगी. इस वर्ष के लिए आप ६ नवंबर १९७० तक अपनी सम्मतियां भेज सकते हैं.

संपादन मंडल

नये एफ. आर. एस. प्रोफेसर मेनन

श्री मानबिल्लीकलाथिल गोविंद कुमार मेनन ब्रह्मांड किरणों के क्षेत्र में अपने उत्तम अनुसंधान कार्य के कारण यथेष्ठ लोकप्रिय हैं. उनके इस कार्य को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हो चुकी है. आचार्य मेनन ने भौतिकशास्त्र के क्षेत्र में सन् १९६० का शांतिस्वरूप भटनागर स्मारक पुरस्कार अपने महत्वपूर्ण योगदान के फलस्वरूप पाया तथा भारत सरकार ने उन्हें १९६१ में पद्मश्री की उपाधि से भी विभूषित किया. आचार्य मेनन भारतीय विज्ञान अकादमी और आधार भूत व अनुप्रयुक्त भौतिकी के अंतरराष्ट्रीय संघ के सदस्य हैं. सन् १९६८ में भारत सरकार द्वारा वे पद्मभूषण से विभूषित किये गये तथा हाल ही में लंदन की रायल सोसायटी ने सदस्यता के लिए उन्हें चुनकर उनका सम्मान किया है.

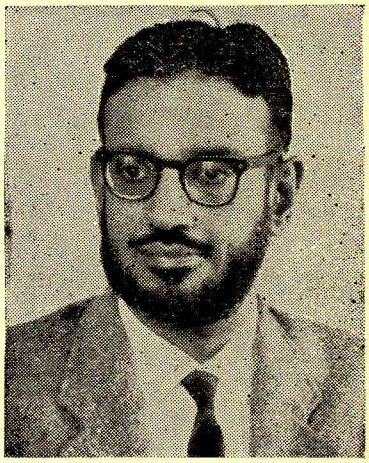

आचार्य मेनन का जन्म २८ अगस्त १९२८ को हुआ. उनकी-शिक्षा जसवंत कॉलेज जोधपुर (१९४२ से १९४६ तक), १९४६ से १९४९ तक रायल इंस्टीट्यूट बंबई में, १९४९ से १९५५ तक इंगलेंड स्थित ब्रिस्टल विश्वविद्यालय की एच. एच. विल्स प्रयोगशाला में हुई. ब्रिस्टल विश्वविद्यालय से १९५२ में उन्होंने डॉक्टर ऑफ फिलास्फी की डिग्री प्राप्त की. यहां उन्हें नोबुल पुरस्कार विजेता आचार्य सी. एफ. पावेल जो कि लंदन की रायल सोसायटी के सदस्य भी हैं के साथ अनुसंधान कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ था.

आचार्य मेनन १९५२-५६ में ब्रिस्टल विश्वविद्यालय में अनुसंधान स्नातक के रूप में रहे. तत्पश्चात दो वर्ष तक उन्होंने ब्रिटेन के राजकीय आयोग के एक उच्च पद पर कार्य किया. केवल डा. भाभा ही एक अन्य भारतीय वैज्ञानिक हैं जिनको यह सम्मान प्राप्त हो सका था. सन १९५५ में आधारभूत अनुसंधान के टाटा-संस्थान में आचार्य मेनन का रीडर के रूप में आगमन हुआ. सन १९५८ में आप संस्थान के उप-आचार्य बनाये गए. सन १९६० में उन्हें आचार्य (प्रोफेसर) तथा भौतिक विभाग के डीन की पदवी दी गई, तथा १९६४ में वे संस्थान के उपप्रधान के पद पर पहुंच गए. संस्थान के तत्कालीन प्रधान स्वयं डॉ. होमी जहांगीर थे. एक वायुयान दुर्घटना में डॉ. भाभा के निधन के पश्चात फरवरी, १९६६ में आचार्य मेनन टाटा-संस्थान के प्रधान नियुक्त हुए. वे आजकल ब्रह्मांड किरणों से संबंधित अनुसंधान कार्य के करने तथा इस क्षेत्र में अपने सहायकों के यथोचित मार्गदर्शन करने में संलग्न हैं.

प्रोफेसर मेनन को जोधपुर विश्वविद्यालय ने अपने १९७० के दीक्षांत समारोह में डाक्टर ऑफ सायंस की उपाधि से विभूषित करके सम्मान दिया है.

आचार्य मेनन आधारभूत तथा अनुप्रयोगिक भौतिकी के अन्तरराष्ट्रीय संघ द्वारा स्थापित ब्रह्मांड किरण आयोग के सचिव सदस्य भी हैं.

अनुसंधान के जिन क्षेत्रों में आचार्य मेनन का

प्रमुख योगदान रहा है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं. न्यूक्लीय इमल्शन तथा गुब्बारों की उड़ानों की नई नई तकनीकों का विकास; मूल - कण-भौतिकी, विशेषरूप से नए कणों से संबंधित, तथा उच्च स्थलों एवं पृथ्वी के धरातल की गहराइयों पर भारतीय स्थितियों में ब्रह्मांड किरणसंबंधी अनुसंधानकार्य. उन्होंने इन विषयों पर टाटा संस्थान के सहकर्ताओं के साथ तथा विदेश में अनुसंधान कार्य करके लगभग पचास शोधपत्र प्रकाशित किये हैं. देश-विदेश की विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित इन शोधपत्रों ने मेनन को विश्वव्यापी ख्याति प्रदान की है तथा वैज्ञानिक रूचि के निम्नउल्लेखित पहलुओं पर यथेष्ठ प्रकाश डाला है :-

- के-मेसान संबंधी प्रकीर्णन प्रक्रिया का सर्वप्रथम प्रदर्शन तथा उससे संबंधित वैज्ञानिक चर्चा.
- बड़े स्टैकों तक न्यूक्लीय इमल्शन संबंधी अनुसंधान कार्य का विस्तार.
- उष्ण जलवायु वाले देशों में बीस घन फुट आयतन तक के उड़ने वाले गुब्बारों के बनाने तथा विशेषरूप से बहुत कम तापमान पर उनको उड़ाने की तकनीकों का विकास.
- कई प्रकार के गणना करने वाले दूरदर्शक यंत्रों, जिनमें गैस के ऊंचे दाब पर कार्य करने वाले सेरेनकोव गणक भी सम्मिलित हैं, का प्राथमिक ब्रह्मांड किरणों के लिए प्रयोग.
- ब्रह्मांड किरणों तथा ऊंची ऊर्जा वाले न्यूट्रिनों की आपसी प्रक्रियाओं का सर्वप्रथम स्पष्ट अध्ययन.
- भारी मेसान कणों (के-कणों) के क्षय के दौरान प्राप्त उत्पाद - जैसे भिन्न भिन्न ऊर्जा वाले म्यूआन कण, एक हीं किंतु उच्च ऊर्जा वाले पायॉन कण तथा द्वितीयक इलेक्ट्रॉनों के अस्तित्व का प्रदर्शन. इससे क्षय प्रक्रिया की के$_3$ एवं के$_{E3}$ विधियों का स्पष्ट आधार स्थापित हो सका है.

प्रस्तुत कर्ता : डा. प्रताप कुमार माथुर

पृष्ठ ४ का शेषांश

प्रायोगिक सुविधाएं

अप्सरा रिएक्टर भौतिकी, रसायनिकी, और जैविकी आदि क्षेत्रों में अनुसंधान के लिए बहुत ही लाभदायी केंद्र है. इसमें 4×10^{12} न्यूट्रान प्रतिवर्ग सें.मी. प्रति सेकन्ड तक न्यूट्रॉन फ्लक्स उपलब्ध किया जा सकता है. भिन्न भिन्न प्रयोगों के लिए रिएक्टर क्रोड को टंकी में ट्रॉली द्वारा किसी भी स्थान पर रखा जा सकता है. जैसा कि रिएक्टर के सेक्शन चित्र में दिखाया गया है कि 'अ' स्थान पर पांच और 'ब' स्थान पर तीन प्रायोगिक छिद्र हैं. इन प्रायोगिक छिद्रों में से निकलते हुए गामा और न्यूट्रॉन पुंजों की सहायता से न्यूक्लीय भौतिकी, रेडियो रसायनिकी, और जैविकी के बहुतसे महत्वपूर्ण प्रयोग किये जाते हैं. 'अ' स्थान के पासवाले तापीय स्तंभ के छिद्र में तापीय न्यूट्रॉनो के साथ करने योग्य प्रयोग संपन्न किए जाते हैं. इस तापीय स्तंभ के बिल्कुल सामने 'स' स्थान पर परिरक्षात्मक पदार्थों के गुणों को जानने वाले प्रयोग किये जाते हैं.

इन अनुसंधानिक प्रयोगों के अतिरिक्त इस रिएक्टर में रेडियोसमस्थानिकों का निर्माण भी बड़ी संख्या में किया जाता है ये रेडियो समस्थानिक बड़े-बड़े उद्योगों और अस्पतालों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं. अस्पतालों में कैंसर की चिकित्सा के लिए, कारखानों में संधानों और ढलवां धातुओं के दोष निरीक्षण के लिए, बंदरगाहों में जल की धारा से मिट्टी इकट्ठा होने की प्रवृत्ति जानने के लिए, खाद्य पदार्थों को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखने के लिए, और बड़े-बड़े बांधों में पानी का रिसाव जानने के लिए, रेडियो समस्थानिक उपयोग में लाये जाते हैं.

अप्सरा रिएक्टर सर्वप्रथम ५ अगस्त १९५६ की सुबह ३ बजकर ४५ मिनट पर क्रांतिक अवस्था में पहुंचा, इसमें इन पिछले १३ वर्षों में बहुत से महत्वपूर्ण परीक्षण किये जा चुके हैं, और प्रतिवर्ष लाखों रुपयों की लागत के रेडियो समस्थानिक निर्माण किये जाते हैं.

अप्सरा रिएक्टर के निर्माण और प्रचालन से प्राप्त हुए अनुभव और आत्म विश्वास के बल पर ही आज भारत परमाणु शक्ति के क्षेत्र में इतना आगे बढ सका है.

विज्ञान खबरें

परमाणु ऊर्जा सूचना बैंक

प्रतिदिन एक बहुत बड़ी मात्रा में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण होता है. यह साहित्य लेखों, पुस्तकों अथवा सूचनात्मक विवरणों के रुप में प्रकाशित होता है. अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी कम्पयूटर की सहायता से बिखरे हुए वैज्ञानिक साहित्य का अनुसरण कर संसार के वैज्ञानिकों तथा इंजीनियारों तक यह साहित्य पहुंचाने की योजना को इसी वर्ष कार्यरुप प्रदान करने वाली है. इस योजना के उद्देश्य हैं. पुनर्लेखन की समस्याओं को दूर करना, श्रम की बचत करना और शीघ्र से शीघ्र सूचनाएं उपलब्ध कराना. यह 'सूचना बैंक' विएना में खोला जा रहा है.

मस्तिष्क का बढता आकार

सैकड़ों वर्षों से यह धारणा चली आ रही है कि आदमीके मस्तिष्क का आकार उसकी मानसिक सक्रियता द्वारा प्रभावित होना चाहिए किन्तु वैज्ञानिक इस धारणा को अब तक प्रयोगों द्वारा सिद्ध नहीं कर सके थे हाल ही में हुई वैज्ञानिक खोजों ने इस धारणा की पुष्टि की है. प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि जब चूहों को शिक्षा पूर्ण वातावरण में एक रखा गया तो उनके मस्तिष्क के भार तथा आकार में ६ प्रतिशत वृद्धि हुई. कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान के प्रोफेसर मार्क रोसेन ज्वाइग का कहना है कि मानसिक श्रम से मस्तिष्क की क्षमता में वृद्धि होती है. पशुओं पर किये प्रयोगों द्वारा उनका विश्वास दृढ़ हो गया है कि मनुष्य में भी ऐसे परिवर्तन होते है.

पेय जल की समस्या

पृथ्वी पर विद्यमान पानी के प्रत्येक १००० गैलन में से केवल ३ गैलन पानी ही पीने योग्य है. शेष पानी में नमक घुला हुआ है. मानव की उत्तरोत्तर रुप से बढ़ती पानी की आवश्यकता का शेष ९९७ गैलन खारा पानी ही उत्तर है. समस्या है इस पानी को कम खर्चे पर नमक-हीन बनाने की. इस समय विश्व में २५२ निर्लवणीकरण संयंत्र हैं. इनमें से भारतवर्ष में केवल ६ ही हैं.

जलवायु सूचक रॉडार

भारत के समुद्र तट पर आठ शक्तिशाली राडारों का जाल बिछाया जायेगा जिससे उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की सूचना ठीक समय पर और सही रुप से प्राप्त हो सके.

जेट इंजन तथा रेडियो आइसोटोप

भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, बंबई लगभग ३५० विभिन्न रेडियो आइसोटोपों का उत्पादन एवं उनकी पूर्ति करता है. रेडियो आइसोटोप, उद्योग, चिकित्सा, अनुसंधान तथा कृषी के क्षेत्रों में मूल्यवान योगदान कर रहे है. कोबाल्ट–६० नामक रेडियो आइसोटोप इनमें प्रमुख है. भारत में आइसोटोप प्रयोगों की नवीनतम सफलता है, एयर इंडिया के बोइंग ७०७ जेट इंजनो की रेडियोआलेखी विधि से जांच. यह जांच भाभा केंद्र के आइसोटोप प्रभाग द्वारा की जाती है. इससे भारत को काफी विदेशी मुद्रा की बचत होगी.

चंद्रमा पर कॉलोनी

"अब से दस वर्ष के अंत तक मानव चंद्रमा पर रहना शुरु कर देगा, कॉलोनियां बना कर" ये शब्द हैं अमरीकी वायुसेना के भूतपूर्व निर्देशक कर्नल सल्वेटोर ए. पैले के. यह कॉलोनी चंद्रतल के नीचे होगी. क्योंकि चंद्रतल पर विकिरण, ताप तथा उल्कापात जैसी अनेक समस्याएं उपस्थित होती हैं.

संकलन कर्ता: देवकीनंदन

विचार मंच

आप वैज्ञानिक हैं, इंजीनियर हैं तकनीशीयन हैं. अथवा साधारण पाठक विचार मंच में प्रकाशनार्थ आपके विचार आमंत्रित हैं. विज्ञान भारत के लिए अभी नया है. संभव है कि यह स्तंभ भारतीय परिवेश में विज्ञान के वर्तमान स्वरुप को उजागर करने में सफल हो और आज की वैज्ञानिक स्थिति को सामने लाये !

संपादन मंडल

डा. खुराना की एक खोज

डा. खुराना की एक खोज संबंधी लेख में पढ़ा था कि क्रोमोसोम और जीन को लेकर डी. न्यू. ए. आनुवंशिक नियम की उन्होंने खोज की है. उस का सम्बन्ध भ्रूण के साथ क्या है ? भ्रूण ही आकार लेता है. जो भ्रूण में नहीं है. क्या वह भी विकसित होता है ? संभव है विस्तृत रूप से आप इस पर प्रकाश डाल सकें.

भारतीय ज्योतिष में जिन सात ग्रहों का वर्णन किया गया है क्या उनकी ऊर्जा सूर्य द्वारा प्रतिक्षिप्त होती है अथवा उनका सीधा प्रभाव होता है. कहीं पढ़ा था कि हीरा अल्ट्रावायलेट किरणों का शोषण कर लेता है. क्या शुक्र द्वार अल्ट्रावायलेट किरणों का प्रक्षेपण होता है ?

यदि संभव हो तो कृपया यह भी सूचना देने का कष्ट करें कि ज्योतिष के फलित को लेकर वैज्ञानिक ढंग से कहीं अनुसंधान हो रहा है या नहीं ?

चंद्र अभियान का फलित ज्योतिष की दृष्टि से क्या अमेरिका में कुछ खोज हो रही है ? यदि हो रही है तो कहां ?

वि. रा. चतुर्वेदी
(श्यामनगर, प. बंगाल)

प्रकृति का नियम

प्रकृति समस्त विज्ञानों की मां है. सन १९६८ में मैंने यह पाया कि वास्तव में प्रकृति के नियम ही सभी प्रकार के विज्ञानों के नियम हैं. ऐसा सोचकर मैंने एक महत्वपूर्ण तथा साधारण "प्रकृति के नियम" की रचना की.

इसके अनुसार :–

जब प्रकृति में दो वस्तुएं (अ एवं स) भिभिन्न भौतिक रुपों अथवा क्रियाओं में पायी जाती हैं तब एक तीसरी वस्तु (ब) प्रकृति म जरूर विद्यमान होगी जो इन दोनों वस्तुओं (अ एवं स) के सम्मिलित गुण रखती हो अर्थात हम ब' को पूर्ण रूप से अ अथवा स नहीं कह सकते हैं. यहां पर वस्तुएं अ ब और स को एक जाती का एक क्रम में होना चाहिये.

इस नियम की गणतीय विवेचना भी की जा सकती है तथा हजारों उदारण इसके पक्ष में दिये जा सकने हैं.क्योंकि यह सभी प्रकार के विज्ञानों के लिये खरा उतरता ह.

मेरा मतलब यह है कि अगर केमिस्ट्री फिजिक्स गणित बायोलॉजी, ज्योतिष आदि विज्ञानों का अध्यन इसके आधार पर किया जाये तो हजारों नयी कोजे की जा सकती है

मैं इसके पक्ष पक्ष मे एवं उदाहरण स्पेक्ट्रम का देना चाहगा हूं,

इसमें श्वेत प्रकाश के सातों रंग एक ही क्रम (VIBGYOR) तथा एक ही जाति के है.

	अ		स	ब
१	बैंगनी	–	नीला;	इंडिगो
२	इंडिगो	–	हरा;	नीला
३	नीला	–	पीला;	हर
४	हरा	–	नारंगी;	पीला
५	पीला	–	लाल;	नारंगी

अर्थात ब में अ एवं स के कुछ कुछ अंश मौजूद है जो उपरांत नियम का पूर्णत: पालन करता है.

पता : विवेक कुमार कोठिया
द्वारा पं. बंशीधाव्यारणाचार्य कपड़े की दुक न
इटावा बाजार बीना, (म. प्र.)

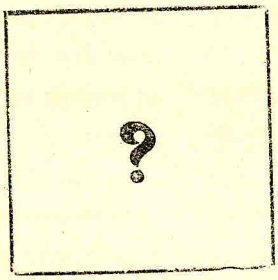

वैज्ञानिक का प्रकाशन क्यों ?

इसलिए कि विज्ञान की नवीनतम जानकारी हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध हो; वैज्ञानिक चिन्तन हिन्दी में आरम्भ हो; अंग्रेजी अनुवादों का स्थान मौलिक रूप से हिन्दी में लिखे हुए लेख लें विज्ञान में रुचि रखने वाले लेखकों और पाठकों को एक मंच मिले.

आप वैज्ञानिक हैं या विज्ञान वेत्ता अपने कार्य की सूचना दें. विज्ञान संबंधी अपनी समस्याओंसे अवगत करायें अपनी सामर्थ्य अनुसार यथासंभव उनका निदान वैज्ञानिक में प्रकाशित किया जायेगा .

आप कुछ कहेंगे ...

आपकी परिषद कुछ समय से हिंदी पाठकों के लिए विज्ञान संबंधी जो सामग्री हिंदी के साप्ताहिक और मासिक पत्रों द्वारा परोस रही है उसके लिए मेरा अभिनंदन स्वीकार करें.

रसिकलाल मेहता, बुरहानपुर

परिषद द्वारा प्रकाशित पत्रिका का परिचय अंक मिला. काफी उत्साह के साथ पूरा पढ़ गया. पढ़ने के बाद ही पृष्ठ संख्या की कमी अखरी. इसे बढ़ाने का प्रयत्न होना चाहिए.

राजीव लोचन साह, नैनीताल

परिचय अंक मिला. आपके प्रयासों से राष्ट्रभाषा का साहित्य समृद्ध हो यही मेरी कामना है,

रत्नसिंह शाडिल्य, महामंत्री, भारतीय साहित्य परिषद
नयी दिल्ली

आपकी पत्रिका का परिचय अंक देखा पर संतोष न हुआ. बहुत तेज प्रगति की आवश्यकता है. हां, यह अवश्य कहूंगा कि प्रयास सराहनीय है. पत्रिका के लेखों का स्तर एक बच्चे से एक वैज्ञानिक तक होना जरुरी है जिससे केवल एक वर्ग विशेष को ही नहीं अपितु सभी को पत्रिका समान रूप से प्रिय हो. विज्ञान की नवीनतम सूचनाओं का बाहुल्य होना चाहिए, साथ ही किस क्षेत्र में अनुसंधान की आवश्यकता है इसका मुख्य रूप से उल्लेख अपेक्षित है. यदि आप हर माह भारतीय वैज्ञानिकों की कृति, कार्य एवं जीवन का संक्षिप्त परिचय चित्र सहित छापने की व्यवस्था करें तो पत्रिका में एक नवीनता का समावेश हो जायेगा. इसके साथ ही नव-वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन का कार्य भी परिषद को ही करना होना.

जितेंद्र कुमार, गोपेश्वर

पत्रिका का शरद-हेमंत (परिचय-अंक) मिला. व्यस्तता के कारण अभी पूरा नहीं पढ़ पाया. वैसे जिन्होंने पत्रिका देखी है स्तुति की है.

रामस्वरुप 'रक्षक' अजमेर

आपकी पत्रिका का परिचय-अंक प्राप्त हुआ. रोचक एवं ज्ञानवर्धक है तथा सही दिशा में उचित प्रयास है.

'पुस्तक समीक्षा' शीर्षक के अंतर्गत श्री जगदीश मित्र द्वारा की गयी 'पृथ्वी की आयु' पुस्तक की समीक्षा पढी. समीक्षा में समीक्षक ने लिखा है. . .

'यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया ह कि भारतीय ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी की आयु, विज्ञान की आज की विधियों द्वारा ज्ञात आयु के निकट है. अच्छा होता कि लेखक अस्पष्ट एवं संदिग्ध विचारों को आधुनिक विचारों का जामा पहनाने की कोशिश न करता.

समीक्षक के इस विचार से सहमत होना संभव नहीं है. ज्योतिष भारत के प्राचीनतम विज्ञानों में से है. इसमें प्राचीन आर्यों की अपनी महत्तम उपलब्धियां थीं. भारतीय पद्धति के ज्योतिषी ही तो ग्रह गतियों की गणना कर वर्षों पूर्व से ग्रहण आदि खगोलीय घटनाओं का उल्लेख कर देते हैं जो वर्षों बाद, उसी समय घटित होती हैं. इतने यथार्थ विज्ञान को 'अस्पष्ट एवं संदिग्ध' लिखकर समीक्षक ने भारतीय उपलब्धियों की विदेशी आक्रामकों द्वारा पहले से ही ध्वस्त, इमारत को एक ओर धक्का देने का प्रयास किया है.

यह केवल अनुमान या कल्पना नहीं है कि भारतीय ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी की आयु विज्ञान की आज की विधियों द्वारा ज्ञात आयु के निकट है, परंतु एक तथ्य तथा अकाट्य सत्य है.'

डा. बालगोविंद जायसवाल
रसायन विभाग, शासकीय महाविद्यालय
जगदलपुर

सत्यमेव जयते

राज्यमंत्री
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
तथा संचार विभाग,
नयी दिल्ली, भारत

संदेश

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद का परिचय पाकर और इसके मुखपत्र ' वैज्ञानिक ' का परिचय अंक देख कर हार्दिक प्रसन्नता हुई. हमारे नवयुवक और लब्ध प्रतिष्ठ वैज्ञानिकों के द्वारा हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध करने के लिए उठाया गया यह कदम प्रशंसनीय और अनुकरणीय है,

आधुनिक भारत के वैतालिक भारतेंदू जी, ने कहा था ' निज भाषा उन्नति अहं सब उन्नति को मूल '. अंग्रेजों की पराधीनता के समय हम ने इस मूलमंत्र को भुला दिया था. उस युग में अंग्रेजी ही हमारे देश में शिक्षा और ज्ञान विज्ञान की भाषा रही. फलस्वरुप हम ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पिछड़ गये. संसार के जिन देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति की है उन्होंने यह उन्नति अपनी भाषाओं के ज़रिये की है. कभी हमारा देश भी विज्ञान के क्षेत्र में संसार में अग्रणी था. उससमय हमने भी यह उन्नति अपनी भाषा संस्कृत के जरिये की थी मेरा दृढ़ विश्वास है कि जब तक हम अपनी भाषाओं के जरिये विज्ञान की शिक्षा नहीं देंगे हम उन्नति नहीं कर सकते.

परिषद ने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन और उसके प्रसार का संकल्प लिया है. मैं उसके उद्देश्यों की प्रशंसा करता हूं. मुझे यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई है कि इस दिशा में नवयुवक वैज्ञानिकों ने पहल की है वस्तुतः मुझे इन्ही से इस दिशा में कुछ कर गुजरने की आशा है. कृपया मेरी हार्दिक बधाइयां और शुभकामनाएं स्वीकार करें.

सरल भाषा में विविध सूचनाओं से परिपूर्ण और सुसंपादित "वैज्ञानिक" के इस अंक के लिए भी मेरी भूरिशः बधाइयां लें. मैं इस पत्र के दीर्घायुष्य की कामना करता हूं.

शेर सिंह

हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद

शुभ कामनाएं

एक हितेच्छु

धीवरों की पुरातन-कला का आधुनिकीकरण

ललित चन्द्र चन्दोला. स्पेक्ट्रास्कोपी प्रभाग. भा. प. अ. केंद्र, बम्बई.

महा प्रलय के उपरांत जल-प्लावित पृथ्वी के ऊपर एक मछली की नाक से अपनी नाव बांधकर आदिमानव मनु ने अपनी प्राण रक्षा की तथा सृष्टि की रचना के लिए पुनर्उधत हुए. प्रकृति तथा पुरुष का यह संबंध एक अकिंचन मछली की कृपा से संभव हो सका. रामायण में, मकरध्वज की उत्पत्ति एक मछली के पेट से बतायी जाती है. महाभारत में अर्जुन ने पानी में मछली की प्रतिच्छाया देखकर एक घूमते चक्र के बीच से तीर द्वारा उसकी आंख को बेधा था और इस प्रकार द्रौपदी को जीता था. भीष्म पितामह के आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेने का कारण थी एक धीवर कन्या मत्स्य-गंधा. कालीदास के नाटक शकुंतला में एक मछली ने शाप-ग्रस्त राजा दुष्यंत की अंगूठी निकालकर एक महत्वपूर्ण भूमिका निबाही. इस प्रकार मछली तथा धीवरों की असंख्य गाथाएं हमारे प्राचीन तथा अर्वाचीन साहित्य में मिलती हैं. भारतीय संस्कृति में पुरातन काल से ही धीवरों का स्थान रहा है.

इतना पुराना संबंध होने पर भी शस्य-श्यामला भारतभूमि को अपने अधिकांश लालों के पोषण के लिए जल-प्राप्य असंख्य जीवों की शरण नहीं जाना पड़ा. समय के साथ साथ जनसंख्या बढी, पर घी, दूध और अन्न का उत्पादन स्थिर रहा. उतनी ही मात्रा के खाद्य पदार्थों में अधिक लोगों को जीवन-यापन करना पड़ा. इससे राष्ट्र दुर्बल हो गया. जीवन-शक्ति प्राप्ति के अन्य साधनों की खोज होने लगी.

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उत्तरदायी भारत सरकार का ध्यान देश के खाद्य-साधनों के सुधार पर गया. विज्ञान के बढ़ते कदमों ने यह बताया कि भारत की बहुसंख्यक जनता के दैनंदिनीय भोजन में प्रोटीन की मात्रा बहुत कम रहती है. और मछली प्रोटीन का एक समृद्ध भंडार है. स्वभावतः कृषि विकास योजनाओं के साथ साथ ध्यान मत्स्य उद्योग पर भी केंद्रित हुआ. मत्स्य-पालन संबंधित विभिन्न स्तर के कई अनुसंधान संस्थान स्थापित किये गये तथा प्रत्येक पंच-वर्षीय योजना में अधिकाधिक पूंजी इस काम के लिए नियत की गयी.

मत्स्य-उद्योग के विकास, विस्तार तथा आधुनिकीकरण में प्रत्येक कदम पर विशिष्ट ज्ञान तथा तकनीकी जानकारी की आवश्यकता होती है. भारत में मत्स्य-उद्योग से संबंधित प्रशिक्षित तथा तकनीकी लोगों की कमी को ध्यान में रखते हुए सरकार ने सन १९५९ ई. में मत्स्य-पालन शिक्षा तथा तत्संबंधी उद्योग के संगठन के लिए एक कमेटी स्थापित की, जिसका काम यह ज्ञात करना था कि देश में मत्स्य-पालन के क्षेत्र में कितने प्रशिक्षित लोगों की मांग है? तथा कैसे ये प्रशिक्षित लोग प्राप्त किये जा सकते हैं? इस कमेटी की जांच पड़ताल के परिणाम स्वरुप केंद्रीय मात्सिक शिक्षा संस्थान (सेंट्रल इंस्टीटचूट फॉर फिशरीज एज्यूकेशन) का जन्म हुआ. इस संस्थान की संस्थापना सन १९६१ ई. में इंस्टीटचूट ऑफ सायंस बंबई के एक विभाग के रुप म हुई. इस संस्थान को विभिन्न प्रान्तीय सरकारों, केंद्रिय सरकार तथा निजी प्रतिष्ठानों के जिला-स्तर के आधिकारियों को मत्स्य-शिक्षा विज्ञान में स्नातकोत्तर (पोस्ट ग्रेजुयेट) स्तर की शिक्षा देने का काम सौंपा गया. कालांतर में बंबई के ही एक अन्य मुहल्ले मस्जिद-बंदर में एक क राये के मकान में यह संस्थान काम करने लगा.

इस संस्थान का विकास एक महत्वपूर्ण मात्सिक शिक्षा केंद्र के रुप में करने के लिए भारत सरकार ने "संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम" की सहायता प्राप्त की. संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य तथा कृषि संगठन की देखरेख में यह सहयोग संपन्न हुआ. शर्तों के अनुसार भारत सरकार को तीन साल के अंदर ही संस्थान के

लिए एक बड़ी इमारत, शिक्षार्थियों के लिए क्षात्रावास, प्राध्यापकों के लिए आवास, मत्स्य-संवर्धन के लिए फील्ड ट्रेनिंग केंद्र आदि की स्थापना करनी थी. दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने संस्थान को मात्सिक-शिक्षा के क्षेत्र में आवश्यक विशेषज्ञों की आपूर्ति, प्रयोगशाला - निर्माण तथा अन्य उपकरणों को देने का वायदा किया जो साधारणतः भारत में उपलब्ध नहीं है पर मात्सिक-शिक्षा में जिनकी आवश्यकता पड़ती है.

इस अवसर पर प्रगतिशील महाराष्ट्र सरकार ने संस्थान के लिए बंबई के उपनगर काकोरी कैम्प, वर्सोवा में करीब साढे चार एकड़ भूमि दान में दी ताकि वहां पर संस्थान को स्थायी रूप से स्थापित किया जा सके. यहां पर बनने वाली विभिन्न इमारतों का मूल्य ३० लाख रुपया आंका गया तथा निर्माण का काम केंद्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग ने अपने हाथों में ले लिया. अप्रैल १९६७ तक संस्थान का मुख्य भवन निर्मित हो चुका था, अन्य इमारतें तदनंतर जुड़ती रहीं.

मत्स्य-उद्योग के विभिन्न पहलुओं पर विस्तारपूर्वक शिक्षा देने वाला यह देश का पहला संस्थान है. इसमें पढ़ाये जाने वाले मुख्य विषय हैं–देशाभ्यांतर (इनलैंड) तथा समुद्र मात्सिक शास्त्र, मच्छीमार नाव तथा गियर तकनीकी, मत्स्य संसाधन (प्रोसेसिंग) तकनीकी, मत्स्य संबंधी प्रशासन तथा कानून, मात्सिक सांख्यिकी (स्टैटिस्टिक्स), मात्सिक अर्थशास्त्र के सिद्धांत और मत्स्य-उद्योग तथा सहकार. ये विषय ज्ञान-विज्ञान के बहुत ही विस्तृत क्षेत्र में फैले हैं. इनमें जहां एक ओर जहाजरानी इंजीनियरी जैसे पूर्णतः व्यावहारिक विज्ञान को पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है तो दूसरी ओर सांख्यिकी जैसे पूर्णतः सैद्धांतिक तथा जटिल गणित को समझना पड़ता है. एक ओर मत्स्य प्रजनन तथा संवर्धन के प्रयोग करने पड़ते हैं तो दूसरी ओर कागज पर उनकी इकॉनामिक्स समझनी पडती है. इसी कारण इस संस्थान द्वारा दो वर्ष के शिक्षण के उपरांत प्रदत्त डिप्लोमा को भारत तथा प्रांतीय सरकारों ने एम. एस-सी. के समकक्ष की मान्यता दी है.

इस संस्थान में प्रतिवर्ष जुलाई में तीस विद्यार्थियों का प्रवेश होता है. जिनमें से बीस विद्यार्थी विभिन्न प्रांतीय तथा केंद्रीय सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं. पांच सीटें निजी तौर पर पढने वाले विद्यार्थियों के लिए तथा शेष पांच विदेशी छात्रों के लिए सुरक्षित रहती हैं. भारतीय विद्यार्थियों के अलावा यह संस्थान नायजीरिया, सूडान, थाइलैंड, बरमा, अफगानिस्तान, फिलीपीन, श्रीलंका तथा विएतनाम के छात्रों को आकर्षित करता रहा है. इस प्रकार यह केन्द्र अर्द्ध-विकसित देशों के बीच सहयोग की एक कड़ी बन चुका है.

यहां की प्रयोगशालाएं मात्सिक विज्ञान में लगने वाली आधुनिक मशीनों से सुसज्जित हैं. इन प्रायोगिक ट्रेनिंग के साधनों मे अग्रगण्य है संयुक्त राष्ट्र विकास प्रोग्राम द्वारा प्रदत्त ५० फीट लंबी मच्छिमार नाव हार्पोदौं (Harpodon) यह एक आत्मनिर्भर तिमंजली नाव है जिसमें कुल मिलाकर दस नाविकों तथा वैज्ञानिकों के रहने के स्थान के अलावा ६४० घन फुट मारी हुई मछली रखने का स्थान भी है. समुद्रतट से संपर्क बनाये रखने के लिए रेडियो ट्रांसमीटर है इसी के अन्दर एक छोटी सी प्रयोगशाला भी है. सन १९७० ई. तक सरकार द्वारा मंगायी गयी इससे बड़ी ट्रेनिंग नाव आ जाएगी. अन्य साधनों में विभिन्न प्रकार की मच्छीमार नावों के पैमाने पर बने माडेल, नाव इंजनों के आंतरिक भागों को दिखाते हुए माडेल, मछली मारने के जालों के नमूने आदि हैं जो इन क्षेत्रों में पूर्ण ट्रेनिंग देने में सहायक होते हैं.

मत्स्य जैविकी (बायलाजी) लेबोरेटरी में मछलियों पर निशान लगाने की एक पद्धति विकसित की गयी है. विभिन्न प्रकार की मछलियों पर निशान लगा कर उन्हें आवश्यकतानुसार समुद्र में अथवा मीठे पानी के तालाब में छोड़ा जाता है. इस प्रकार अंकित मछलियों की गणना तथा उनके उगने की प्रगति का अध्ययन मत्स्य-जैविकी का एक मुख्य अंग है. यहां पर विकसित अंकन-पद्धति को देश के अन्य मत्स्य-पालन संस्थान भी प्रयोग में ला रहे हैं.

सूक्ष्म-जैविकी तथा जैविकी-रसायन (माइक्रोबायो

लॉजी तथा बायोकैमिस्ट्री) प्रयोगशालाएं, मछलियों तथा मछलियों से बने पदार्थ का रासायनिकी तथा बैक्टीरियल विश्लेषण करने वाले यंत्रों से सज्जित हैं. यहां प्राप्त एक यंत्र द्वारा मछली के तेल में प्राप्त विटामिन 'ए' की मात्रा नापी जा सकती है तो दूसरे द्वारा बर्फ में जमाकर सुरक्षित रखी गई मछली की गुणात्मक परख की जाती है. तीसरे द्वारा एंजाइमों द्वारा मछली के सड़ने की क्रिया का अध्ययन होता है. इसी प्रकार मारी गई मछलियों की ताजगी, उनमें पानी की मात्रा तथा उनमें प्रोटीन के क्षरण आदि की परख के यंत्र हैं.

मत्स्य-संसाधन प्रयोगशाला मुख्यतः दो विभागों में बटी है – ठंड में जमाकर रखने वाला विभाग तथा डिब्बा बंद करने वाला विभाग. ठंड में मछलियों को शून्य डिग्री,–३० डिग्री तथा –४० डिग्री सेंटीग्रेड में रखने की सुविधायें हैं. डिब्बा बंद करने वाला विभाग प्रति घन्ट १५ डिब्बे साफ की हुई मछलियां बंद कर सकता है. इसके अलावा अन्य मशीनें भी उपलब्ध हैं जिनमें मछलियों को तरह-तरह की आकृतियों में काटा जा सकता है, कीमा बनाया जा सकता है तथा मछलियों को पतले-पतले टुकड़ों (स्लाइसेस) में काटा जा सकता है.

बंबई के इस संस्थान में उच्च स्तर के अधिकारियों को शिक्षा दी जा रही है.कुछ छोटे स्तर के (हाईस्कूल तक शिक्षित) कार्यकर्ताओं को, १९६७ में स्थापित दो क्षेत्रीय शिक्षण केंद्र, उत्तर में आगरा तथा दक्षिण में हैदराबाद में ट्रेनिग दी जाती है. इन केंद्रों में गांव, पंचायत तथा खंड (ब्लाक) स्तर पर कार्य करने वाले अधिकारियों को नौ महीने की विस्तृत ट्रेनिंग दी जाती है. ये दो केंद्र प्रशासनिक रुप से बंबई संस्थान के अंतर्गत ह. प्रत्येक केंद्र पर ८० विद्यार्थियों को ट्रेनिंग दी जाती है.

अब केंद्रीय देशाभ्यांतर मात्सिक अनुसंधान संस्थान (सेंट्रल इनलैंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटचूट) बैरकपुर भी बंबई संस्थान के प्रशासनिक अधिकार में आ गया है. बैरकपुर स्थित संस्थान करीब ५० शिक्षार्थियों को स्नातक स्तर की शिक्षा देता है. तथा एक साल की ट्रेनिंग के पश्चात एक सर्टीफिकेट प्रदान करता है इस प्रकार मात्सिक शिक्षा क्षेत्र के हाईस्कूल, स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर की कारगर ट्रेनिंग देने में यह संस्थान सक्षम हो गया है. चौथी पंचवर्षीय योजना में मात्सिक शिक्षा के क्षेत्र में और अधिक विकास किया जाना है. भारत जैसे विस्तृत देश के लिए जिसके पास हजारों मील समुद्र तट है, छोटी -बड़ी सैकड़ों नदियां हैं तथा देशस्थ प्राकृतिक तथा कृत्रिम तालाब हैं, केवल एक संस्थान अपर्याप्त है. इस परिप्रेक्ष्य में यह आशा करना कि निकट भविष्य में यह संस्थान एक तकनीकी विश्वविद्यालय का रुप ले लेगा, अनुचित न होगा.

● ● ●

विज्ञापन–दरें

दूसरा कवर पृष्ठ	:	१५० रुपये
तीसरा कवर पृष्ठ	:	१५० रुपये
चौथा कवर पृष्ठ	:	२०० रुपये
भीतरी पूरा पृष्ठ	:	१०० रुपये
आधा पृष्ठ	:	६० रुपये

(दूसरे, तीसरे, और चौथे कवर पृष्ठों पर दिये जाने वाले विज्ञापन रंगीन भी छप सकते हैं)

वैज्ञानिक, विज्ञान से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के पास जाती है. व्यापार बढ़ाने का उचित अवसर. वार्षिक विज्ञापन-दाताओं को अतिरिक्त रियायत.

सम्पर्क : व्यवस्थापक 'वैज्ञानिक,'
हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद,
सूचना प्रभाग, भा. प. अ. केन्द्र,
बंबई–८५

और अंत में . . .

आदमी की सीमाएं बहुत कुछ ऐसा नहीं करने देती जिसकी वह इच्छा करता है. रास्ते में अनेक बाधाएं आती हैं. --राई - पहाड़, खंदक खाइयां. लेकिन क्या यह सब देख कर वह चुप बैठ जाये?

परिचय -अंक के पश्चात यह अंक छः महीने के अंतर से प्रकाशित हुआ है. इस बीच हमारे पास अनेक पत्र आये जिनसे हिंदी के विज्ञान-पाठक की असीम आतुरता का भान होता है. अनेक व्यक्तियों ने मूल्यवान सुझाव हमें भेजे हैं - यहां फिर सीमाएं आड़े आती है. किंतु जहां तक संभव हुवा है हमने अपने मान्य पाठकों के सुझावों का समावेश किया है.

जनमानस को भारत में बढ़ती हुई वैज्ञानिक जागरुकता का ज्ञान होता रहे इसे ध्यान में रख कर अगले अंक से एक नया स्तंभ - विज्ञान केंद्रों से प्रारंभ किया जा रहा है.

देश की विभिन्न अनुसंधान शालाओं, और इंजीनियरी प्रतिष्ठान - संस्थाओं के संबधित अधिकारिओं से हमारा विशेष निवेदन है कि वे अपने केंद्र में हुई उपलब्धियों से हमें परिचित कराते रहें.

हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद की यह पत्रिका अब समाचार पत्र के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत हो गयी है. भविष्य मे नियमित रुप से इसका प्रकाशन होगा ऐसी आशांएं बन रही हैं.

आपके अनिवार्य सहयोग की अपेक्षा हमें सदैव बनी रहेगी.

संपादन मंडल